कभी पढा था कि वह भी
क्या कविता और वह भी क्या वनिता
जो 'पदवि`यासमात्रेण'
देखने वाले का हृदय न हर ले
ऐसा ही होता है पहाडी घस्यारी का पदवि`यास
उसके काले इटैलीन के जीण लहगे की
मक्लीबेल की अलौकिक झलक की आभा
अपने पाठको तक पहुचाने मे
मेरी लेखनी को
प्रयास नही करना पडता
अलकापुरी की वह उवशी
बकरियो के साथ-साथ उनका भी
मन हाक्ती चली जाए
यह मैं प्राणपण से चेष्टा करती रही हू
मेरे लिए अतीत के गभ से
झाक्ते वे सु दर चेहरे अब और भी
अमूल्य बन उठे हैं ।'

शिवानी

सरस्वती विहार
२१, दयानन्द मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

भूमिका

कुमाउनी होने पर भी, विधाता ने मुझे कुमायू म जन्म लेन के सौभाग्य से वचित रक्खा। मेरा जन्म हुआ सौराष्ट्र मे और उसी स्नेही मातृवत् धाय मा की छत्रछाया मेरे शैशव पर बनी रही, किन्तु कैशोर्य म मुझ एक बार अपनी बिछुडी जन्मभूमि मिल गई। यह प्राय ही देखा गया है कि जननी की किसी आकस्मिक लबी बीमारी के कारण, प्रसूतावस्था मे उससे विलग किया गया शिशु जब एक बार फिर उसकी गोद म लौटता है तो जननी एव शिशु दोनों का एक दूसरे क प्रति मोह द्विगुणित हो जाता है। सहमी जननी, अपनी एक बार की बिछुडी सतान को, किसी दयालु शाखामृगी की ही भाति दिन रात छाती स चिपकाए फिरती है। उस भयग्रस्त जननी की श्वास प्रश्वास छाती से चिपके शिशु की ही श्वास प्रश्वास बन उठती है।

ऐसा ही शायद मरे साथ भी हुआ है और इसीसे यदि मेरी कहानियो मे, मेरे उपन्यासों म कुमायू के प्रति मेरे मोह का स्वर रह रहकर मुखर हो उठता है तो मुझे आश्चर्य नहीं होता। किन्तु मेरे आलोचको की दृष्टि मे मेरा यही सबसे बडा दोष है। क्यो मेरी प्रत्येक रचना कुमायू के ही सर्योदय एव सूर्यास्त तक सीमित रहती है? क्यो मरी प्रत्येक नायिका अपरूप सुन्दरी होती है? क्यो उसके उठे कपोलो पर पिघले सुवर्ण की पीताभा निरन्तर चमकती चली जाती है? क्या यह दुहराव नहीं है? मैं नहीं कह सकती कि मेरे पाठको को भी यह दुहराव लगता है या नहीं! मेरे लिए तो कुमायू के प्रत्येक सूर्योदय एव सूर्यास्त की निजी मौलिकता है। जिस परिवेश म मैं रही हू जहा मैंने सिर पर घास के अशक्य बोझ की गरिमा वहन करती सुन्दरी ग्राम्या के अलस पद विन्यास को दिन रात देखा है, वहा क्या मुझे एक बार भी बासीपन की गध आई है?

कभी पढा था कि वह भी क्या कविता और वह भी क्या वनिता, जो 'पद विन्यासमात्रेण' देखनेवाले का हृदय न हर ले। ऐसा ही तो होता है, पहाडी पथ्यारी का पदविन्यास! उसके काले इटैलीन के जीर्ण लहगे की मखमली बेल की अलौकिक झलक की आभा अपने पाठको तक पहुचाने मे मेरी लखनी को प्रयास नहीं करना पडता। अलकापुरी की वह उर्वशी, बकरियो के साथ साथ उनका भी मन हाकती चली जाए, यह मैं प्राणपण से चेष्टा करती रही हू। मेरे लिए तो अतीत के गर्भ से झाकते वे सुन्दर चेहरे अब और भी अमूल्य बन उठे हैं। सच

पूछिए, तो सूम के मूलधन की भाति मैं उसे यत्न से सेंतती रहती हू, क्योंकि सुदर चेहरा अब बडे भाग्य से देखन को मिलता है। कभी कभी सोचती हू कि क्या विधाता न अब सुदर चेहरे गढने ही छोड दिए है? सिनेमा से निकल रही भीड मे, बस म, टेन म, शादी ब्याह के जलसे म, क्यों ढूढने पर भी एक आध ऐसा चेहरा नही जुटता, जिसे देखकर आखें ठडा सकें?

लगता है वह विराट प्रकृत शिल्पी भी रवि वर्मा के से चित्र नही आकता। उसकी आधुनिक रुचि भी अब ऐब्स्ट्रैक्ट आर्ट की ओर ढलने लगी है।

त्रिपुरसुदरी के मदिर शीष को चूमती, उत्तराखड की सूयरश्मि, यदि जाने अनजाने मेरी लखनी को भी चूमती चली गई है तो दोष मेरा नही, प्रकृति का है। कुमायू का प्रत्येक शिलाखड प्रत्यक द्रुम विद्रुम, प्रत्येक गिरिश्रृग, जिस अलौकिक आभा से आलिप्त है उसम कही भी मुझे कोई कदयता या ग्लानि नही दिखती।

जब भी कहानी लिखने बैठती हू स्मतियों के जलप्रपात पर यत्न से धरी गरीयसी शिला कोई अदश्य शक्ति उठाकर दूर पटक देती है, और वह तीव्र फुहार मेरे कागज पत्र मेरी लेखनी और स्वय मुझे आपादमस्तक सराबोर कर छोड जाती है। मेरी अधिकांश कहानियो और उपन्यासों के पात्रों की सष्टि इसी पावन जलधार से अभिषिक्त हुई है। आज स कोई सत्रह वष पूव मैं अल्मोडा मे थी और हमारे बगले स कुछ ही दूर पर था, कुष्ठाश्रम। पास ही म एक बहुत बडा गिरजा घर था जिसके पत्थर पटे, ठेठ पहाडी ढग से बने प्रागण म मेरे कशोय की कुछ सुखद स्मृतिया भी पटकर दबी थी। उसी गिरजे से लगी ककरवाली कोठी मे दो वर्षों तक प्रत्येक ग्रीष्मावकाश व्यतीत करने गुरुदेव शातिनिकेतन से चले आते थे। साथ म रहती बोठान (प्रतिमा देवी ठाकुर), उनकी दोनो पौत्रिया नदिता और नदिनी। हमारा सारा दिन उन दिनो वहीं बीतता था। नदिनी के साथ उसी गिरजे की सीढिया पर हमने न जान कितनी पिकनिक की, कितना होमवक एकसाथ निबटाया और कितने गाने गाए। रवीन्द्र सगीत से गूजनवाला वह सभवत ससार का एकमात्र गिरजाघर था। पास ही मे एक चाय की दूकान थी, जहा स एक बार मूगफली लकर खाने म नन्दिनी को नेपाली आया ने हम बुरी तरह फटकारा था

"खबरदार जो उस दूकान से कुछ लेकर खाया! देखती नही, कितने कोढी यहा बैठे चाय पी रहे हैं? कोढियों की दूकान है वह"

कितने वर्षों पश्चात भाग्य मुझे एक बार फिर उसी दूकान पर खीच लाया। प्राय ही मैं उस सडक पर टहलने निकल जाती। एक तीखा उतार अब भी उसी ढलान म मुक्तेश्वर की ओर उतर गया था और सामन गागर, मुक्तेश्वर धारी की उत्तुग श्रेणिया बस ही गुलदस्त सी बधी थी। बाइ ओर था वही चिरपरिचित

गिरजाघर और नीचे घाटी मे बिखरे कुष्ठाश्रम की टीन की बैरक अब भी वैसी ही थी। दूकान पर कालिख लगी केतली मे उबलती चाय की प्रतीक्षा मे ठूठ से हाथो मे मग थामे भाग्यहीन ग्राहको को पहचानने मे भी मुझे विलम्ब नही हुआ।

उसी कुष्ठाश्रम मे दाडिम तरु तले एक सोलह सत्रह वर्ष की अपरूप सुदरी किशोरी को मै प्राय एक ही भगिमा म खडी नित्य देखती। दोनो हाथ पीछे बाधे, वह तन्वगी पेड से पीठ टिकाए अपनी पिगलवर्णी चमकनी आखो म अपार कौतूहल का अध्य सजोए घडी के काटे के साथ मेरी प्रतीक्षा म खडी रहती। मेरा कौतूहल भी उससे कुछ कम नही था। वह कौन होगी ? क्या इस कच्ची वयस मे ही इस महारोग ने इसके जीवन म विष घोल दिया था या वह किसी कर्मचारी की पुत्री थी ? कई बार निकट से देखन पर भी मुझे उसके शरीर मे कही भी उस रोग का चिह्न नही दिखा। आखिर एक दिन मैंने उससे पूछ ही लिया, "क्या तुम यही रहती हो ?"

मेरा प्रश्न सुनते ही वह मुझे अचरज से देखती रही, भयभीत मृगी सी उसकी वह विस्फारित दृष्टि मै आज भी नही भूल सकी हू। शायद उसने नही सोचा था कि मै पहाडी हू कुछ पल तक, मुझे ऐसे ही देखती वह सहसा तेजी से भागकर उन्ही टीन की बैरको म घुसकर अदृश्य हो गई।

मेरे प्रश्न का उत्तर मिला मुझे तीसरे दिन। किसी दूसरे कुष्ठाश्रम की ही एक विदेशी मिशनरी महिला वही बगला लेकर रहन आई थी। मेदबहुल शरीर स्वच्छ सरल हसी और महा आन दी स्वभाव की उस महिला से मेरे एक दिन का परिचय शीघ्र ही मैत्री म बदल गया। व स्वय क्वेकर थी। इन्ही भाग्यहीन रोगियो की नि स्वार्थ सेवा न उन्हें स्वय इस भयानक रोग का उपहार दे दिया था, किंतु अपनी ही चिकित्सा से वे अब पूर्ण रूप से स्वस्थ थी। उन्होंने मुझे सुदरी किशनुली की करुण कथा सुनाई थी।

उसका श्वसुर एक बार उसकी महीनो से नासूर बन गई पैर की अगुली दिखाने उसे अल्मोडा लाया और डाक्टर ने देखते ही रोग के कुटिल शत्रु को पकड इस बदीगृह मे भेज दिया था। उसका बाका जवान पति लाम पर लडाई मे था। जब लौटा तो सुना—उसकी बालिका वधू को विधि ने ऐसे लौहकपाटो मे मूद दिया है, जहा प्रेम का प्रवेश सर्वथा निषिद्ध है। स्वस्थ होकर लौटने पर भी समाज उसे कभी ग्रहण नही कर सकता। परिस्थितियो से समझौता कर वह एक बार फिर नौशा बन सेहरे की झिलमिल सभालता तिब्बती लद्दू घोडे पर आईना देखता उसी उतार से गुजरा, जहा बारात की तुतुरी रणसींगी सुन भोली किशनुली भागकर दाडिम तले खडी हो गई थी। अपने बूढे श्वसुर, बाघ बकरी खेलनेवाले सखा देवर और लाल झपुरी अयालवाले ससुराल के लद्दू घोडे को पहचानने मे उसने भूल नही की थी। चीखें मारकर वह बारात के पीछे पीछे

भागती दूर तक चली गई थी। स्वयं इसी दयालु डाक्टरनी ने पकड़कर उसे अपनी विराट छाती में भींच लिया था। यही विष्णुली मेरी कहानी 'ग्रामीन' की नायिका है और उस अरण्य में मिली और उसी अरण्य में बिछुड़ गई वह विदेशी डाक्टरनी मेरी 'कृष्णकली' की डाक्टर पैट्रिक है।

'कृष्णकली' की कुछ किस्तों के 'धर्मयुग' में छपते ही पाठकों के रंग बिरंगे पत्रों के अबीर गुलाल ने मुझे रंग दिया था। उनमें सचमुच ही फागुनी बयार की सी मस्ती थी। कृष्णकली कौन है? क्या वह कुमारी है? क्या वह मेरी कल्पना की ही उपज है? यदि नहीं, तो क्या मैं उसका पता भेज सकती हूं? कभी कभी पत्र पढ़कर हंसी भी आती थी, किन्तु एक दिन एक पत्र ऐसा आया, जिसे पढ़कर मैं हंस नहीं पाई। पत्र आया था गोरखपुर कुष्ठाश्रम से। अक्षर एसे थे कि जी में आया चुनकर पिरो लूं। जैसी सुघड़ लिखावट, वैसी ही भाषा। स्वयं अपने अभिशप्त अस्तित्व का परिचय देने में लिखनेवाले की कलम जरा भी नहीं झिझकी थी

शिवानी जी, इसके पूर्व आपकी 'शिवी' पढ़ी, 'अनाथ' पढ़ी और अब 'कृष्णकली' पढ़ रहे हैं। अब तो दोनों हाथों की कुल जमा सात ही अंगुलियां बची हैं और यदि पूरी भी होतीं तो शायद मनचाही प्रशंसा नहीं कर पाता। एक ही प्रश्न पूछना चाहता हूं आपको इस रोग का ऐसा विशद अनुभव कैसे है? क्या आप स्वयं इस रोग की रोगिणी हैं, या आपके परिवार में किसीको यह रोग है?"

तब, मैं उसके इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकी थी, क्योंकि न पत्र में उसका नाम था न पता। केवल गोरखपुर कुष्ठाश्रम के पते पर मेरा उत्तर कहां भटकता? इसीसे आज ही उसका उत्तर दे सकी हूं। न मुझे यह रोग है न मेरे परिवार के किसी सदस्य को किन्तु अचानक मिली उस विदेशी डाक्टरनी की मैत्री ही मुझे इस महारोग के विषय में बहुत कुछ बता गई थी। उसीने कहा था, 'हमारी यह भ्रांत धारणा है कि यह एक भयावह रूप से छूतहा रोग है।"

और फिर, कुछ वर्षों पश्चात् मुझे मिली थी मेरी नायिका। खच्चरों पर पत्थर लादनेवाले पठान जनक ने उसकी मां को छोड़ दिया था। दुखिया पति परित्यक्ता तीन बच्चों को लेकर अपनी बहन की शरण में चली आई थी। वहीं उस मरी को मारने वह महारोग-व्याल उससे लिपट गया। तीनों देवदूत से बच्चे आए दिन कभी चीनी मांगने, कभी आटा मांगने हमारे आंगन में खड़े हो जाते। उनका मौसा पास ही किसी पादरी साहब के सागरपेशे में रहता था। गौरी बुआ (सुमित्रानंदन पंत जी की बड़ी बहन) नित्य ही अपनी भविष्यवाणी दुहराती, 'देख लेना, एक न एक दिन यह लड़की राजरानी बनेगी—आहा, कैसा अठ अंगुलिया कपाल है।"

हमे हसी आ जाती, "जरूर राजरानी बनेगी, बाप पठान है और मा कोढिन। खाने को तो जुटता नही बेचारी को "

किन्तु सचमुच ही उनकी भविष्यवाणी खरी उतरी। वह राजरानी ही बनी। मा के रोग ने विकट रूप धर लिया, तो बहन ने बच्चो सहित उसे गाव भेज दिया। वही कुछ महीनो बाद उसकी मृत्यु हो गई। कुछ ही दिनो बाद जब उस अभागी की बिरादरी ने उसके कुख्यात रोग के कारण, उसके बच्चो को भी दुत्कार दिया तो मिशन ने उन्हे शरण दी। राजरानी को गोद लिया एक विदेशी महिला ने, जिसका सुरुचिपूण सरक्षण उस यवन दुहिता के सौन्दय मे सुहागा बनकर रिस गया।

पठान जनक का ऊचा कद, कुमाउनी जननी की अपूव देहकाति एव विदेशी उच्च समाज के सहवास ने उस खान के खरे हीरे को अब कितने कैरट का बना दिया होगा, यह मैं अनुमान लगा सकती हू। यही कोहनूर मेरी कृष्णकली है।

'भैरवी' की प्रेरणा भी मुझे बहुत कुछ अशो म कुमायू से ही मिली। वैसे वहा धमव्यवस्था की दृष्टि से हिन्दू धम ही प्रमुख है। बौद्धधम आठवी शताब्दी तक रहा। इस धम के कुछ कुछ अनुयायी आज भी कूर्माचल के उत्तरी भाग—जोहार, दारमा—मे मिलत है। गणनाथ', 'पीनाथ' आदि नामो से स्पष्ट है कि कुमायू नाथो की तपस्या भूमि भी रही है। कनफटे जोगी नाथ सप्रदाय की परपरा का आज भी प्रतिनिधित्व करते है।

शिवोपासना के कारण परी, भूत प्रेत, जादू टोने आदि का भी प्रचलन है। कुमायू गजेटियर मे भी विचक्रपट इन कुमायू पर एक अत्यन्त रोचक प्रकरण हैं। 'ग्वाल्ल', ऐडी', 'कलविष्ट', 'चौमू' आदि स्थानीय देवताओ की कचहरी मे कब किसने पुरश्चरण की अपील की थी और कैसा तत्काल न्याय हुआ था, इसकी कितनी ही कहानिया बचपन मे सुनी थी। शायद वही स्मृति 'भैरवी' म भी उभर उठी है।

मेरी आज तक प्रकाशित कहानियो मे 'करिए छिमा' मेरी सबसे प्रिय कहानी है। आरभ स अत तक, उसकी एक एक पक्ति को मैंन कुमायू कथाचल मे जडे सलमे सितारे दु साहस से उखाड उखाडकर सवारा था। मैं जानती थी कि उस आचल की कारचोबी एकदम असली है, किन्तु इस फरेबी युग मे क्या उनकी असलियत की पुष्ट दलील से मैं अपने पाठका का विश्वास जीत पाऊगी ?

कहानी की नायिका पतिता है, किन्तु जैसे तीथस्थान मे किया गया पाप पाप नही होता, ऐसे ही कुमायू की पतिता मे भी एक अनोखा तेज रहता है, ऐसा मेरा विश्वास है। वह पतिता होकर भी पतिता नही लगती। अपन प्रेमी को बचाने मे, अपनी अवैध सतान को जलसमाधि देने मे वह तिलमात्र भी विचलित नही होती। उस पतिता को सतीरूप मे प्रतिष्ठित करना मेरे लिए उस कहानी का सबसे बडा

सिर दद बन गया था ।

नायिका, नवजात शिशु की हत्या के अपराध म, कटघरे मे बदिनी बनी खडी है । विदेशी हाकिम उससे पूछता है, "बोल लडकी, इसका पिता कौन है ?"

"सरकार," वह मुहजोर हसकर कहती है, "आप हाकिम हैं, गाव गाव का दौरा करते है, कितने ही नौले झरनो का पानी पीते हैं, और जब कभी आपको जुकाम हो जाता है, तो क्या आप बता सकते है कि किस झरने के पानी से आपको जुकाम हुआ ?"

अपनी उस नायिका मे यह बयान दिलवाने मे मैंने कितने ही पृष्ठ लिख लिख कर फाडे थे और कितनी ही बार बिगडैल घोडी सी मेरी लखनी बिदककर दो पैरो पर खडी हो गई थी । कुमायू की किसी पतिता की ऐसी ही दी गई कैफियत बहुत पहले कही सुनी थी । प्रेमी को बचाने के लिए एक अपढ पतिता की ऐसी प्रत्युत्पन्नमति, ऐसी हाजिरजवाबी और देवदुलभ सौदय के साथ-साथ ऐसा निष्कपट आत्मनिवेदन क्या कही और मिल सकता था ?

किंतु ऐसी कैफियत मैं उससे कैसे दिलवा दू ? मैं सोचती हू, यह उलझन, केवल मेरी उलझन नही थी । आज से तीस वष पूव वर्जिनिया वुल्फ ने अपनी इसी उलझन के विषय म लिखा है, "मैं कितना कुछ लिखना चाहती हू, किंतु क्या नारी होकर यह सब लिखना मुझे शोभा देगा ? लोग क्या कहगे ?" यही आशंका कि लोग क्या कहगे, एक लेखिका की कल्पना का गला घोटकर रख देती है । कलाकार अपने कल्पनालोक म किसी प्रकार का व्याघात नही चाहता । किसी आशका की सामान्य सी पदचाप ही उसकी कल्पना की मृत्यु का कारण बन सकती है ।

अपनी आशका को दूर पटककर मैं स्वय अपनी नायिका के साथ कटघरे मे खडी हो गई, 'श्रीमान, यह पतिता होकर भी पतिता नही है" मैंने उसकी मूक पैरवी की । और मुझे लगा, वह छूट जाएगी । कहानी के छपने के कुछ ही दिना बाद मुझे जनेन्द्र जी का पत्र मिला, "आपकी कहानी 'करिए छिमा' पढी, मन भर आया । इसीसे जरूरी हो गया कि आपको पत्र लिखू ।" उसी क्षण विजयी नायिका का सुख स्वय मेरा सुख बन गया ।

कुमायूवासी, धमपरायण होते हैं और इस धमपरायणता ने उनके सरल जीवन को एक अनोखी मृदुलता, लावण्य एव स्निग्धता प्रदान की है । ओकले के अनुसार "हिमालय के साहित्य की अपनी मौलिक विशेषता है ।" उन्होने कुमाउनी साहित्य को उसके जन्मदाता हिमालय की ही भाति पवित्र और रहस्यपूण माना है । कूर्मांचल की रहस्यमयी पावन मसिधारा म लेखनी डुबोने का लोभ सवरण करना किसी भी कुमाउनी के लिए सभव नही है । कुमायू के प्रसिद्ध गुमानी कवि मेरे परनाना थे । आज उन्हीकी कुछ पक्तिया आखो के सम्मुख आ जाती हैं ।

क्रम

— ८

करिए छिमा

उस बर्फीले तूफान मे हीरावती की विचित्र खोह मे ब दी हुआ श्रीधर भावनाओ के उफान मे सयम के बधन को तोडकर जैसे आदिम मानव हो उठा और अस्वस्थ मन एव शरीर, दोनो को वह पूण विश्राम देना चाहता था। एक तो वह सवदा अपने प्रत्येक भापण को बडे परिश्रम से प्रस्तुत करता था, फिर इस भापण म तो उसे अपने आगामी चुनाव के प्रतिद्व द्वी को धोवी पछाड की पटखनी देनी थी। मेज पर धरी दुग्ध धवल टोपी उसने सिर पर धर ली। जब तक वह अपने इस जादुई य त्र को सिर पर धर उसकी तीखी उस्तरे सी धार पर हाथ न फेरता, वीणावरदडमडितकरा देवी सरस्वती उससे रूठी ही रहती। टोपी सिर पर धर वह दपण के सम्मुख खडा होकर मुसकराया। प्रभावशाली प्रतिबिम्ब ने और भी अधिक आकपक स्मित का प्रत्युत्तर दिया।

प्रशस्त ललाट, तीखी नासिका, विलासी क्यूपिड अधर और चिकना चुपडा चेहरा। श्रीधर को इस स्मित से स तोप नही हुआ। इस बार, वह और भी आकपक ढग से मुसकराया। होठ भींचकर प्रस्तुत किए गए उस सयमित स्मित का आकपण वास्तव मे अनुपम था।

कौन कहेगा कि वह पचपन वप का है ? काले बालो को कौन सी अमृत बूटी पिलाता है वह ? गत वप यही प्रश्न, विदेश यात्रा के बीच, उससे कई विदेशी गतयौवनाओ ने घुमा फिराकर पूछा था।

वह नम्र मिष्टभाषी भारतीय अपने यौवन की मरीचिका की व्याख्या सक्षिप्त शब्दो मे देता, 'मेरे चिर यौवन का रहस्य है—स्वस्थ मन एव स्वस्थ शरीर।" फिर वह मुसकराकर अपने व्यक्तित्व का द्वार मखमली डिब्बा खोल जगमगाती दाडिम सी द तपक्ति की रत्नराशि से भीड को मुग्ध कर देता।

"क्षमा कीजिएगा," यौवन को सदा गाठ म बाध कब्र तक ले जानेवाली विदेशी रमणिया उसे फिर घेर लेती, "आपने यह ड चर कहा बनवाया ? हमे भी बनवाना है।"

"आपको बडी दूर जाना पडेगा," कहकर वह हसकर आकाश की ओर उगली उठा देता, 'सौभाग्य से हम अधिकाश भारतीयो का एकमात्र डैंटिस्ट अभी भी विधाता ही है।"

बडी देर तक विदेशी रमणिया उसे अविश्वास से घूरती रहतीं।

आज एक बार फिर अपनी उसी स्वच्छ, बहुर्चाचित दंतपंक्ति को गर्व से निहार, वह हाथ बांधे, दर्पण के सम्मुख अपने दूसरे दिन दिए जानेवाले भाषण की आवृत्ति करने लगा। यह उसका नित्य का नियम था। विधान सभा हो या सार्वजनिक जलसा, बिना दर्पण के सम्मुख किए गए एक पक्के रिहर्सल के वह कभी भी अखाड़े में नहीं कूदता था। इसीसे आत्मविश्वास का कभी न छूटनेवाला पक्का रंग उसके गोल चेहरे को वार्निश की सी चमक से चमकाए रखता।

वह अपने उन सहकर्मियों में से नहीं था, जो घर से भाषण का होमवर्क करके नहीं लाते, और ऐन भाषण के बीच विषय से इधर-उधर भटकते बगलें झांकने लगते हैं। उनकी ओछी हरकतों से कभी-कभी उसका माथा लज्जा से झुककर रह जाता था। सेक्रेटरी ने उल्टा-सीधा, लच्छेदार भाषा में भाषण लिख दिया, और उन्होंने करकराती शेरवानी और कलफ की टोपी पहन, मर्सिया सा पढ़ दिया। लच्छेदार भाषा ही तो सब कुछ नहीं होती। विषयवस्तु का भी तो कुछ स्थायी महत्त्व होता है, यह नहीं जानती थी उसकी मूर्ख बिरादरी। पर कौन समझाए उन्हें? उनके कानों में तालियों की गड़गड़ाहट और गले में फूलों की माला पड़ गई, तो गंगा नहा ली। पर श्रीधर जनता को पहचानने लगा था। और जो कुछ भी हो, आज की बुद्धिजीवी जनता को छला नहीं जा सकता। इससे वह अपने दिमाग के कोठे को ठसाठस भरकर रखता था। उसके शब्दों के चयन, वाणी के ओज और उतार-चढ़ाव में ध्रुपद धमार के गायक की सीधी आड़ी, दुगुन और चौगुन लयकारी रहती। जैसे लच्छेदार बातों के जाल में दर्शकों को उलझा, चतुर बाजीगर हाथ के कबूतर को सहसा हवा में फड़फड़ा अदृश्य कर देता है और उसी पल भीड़ को उलझन में डालने को चादर से ढका अपने पैर का अंगूठा ऐसे हिला देता है, जैसे ठीक कबूतर की मुंडी हिल रही हो।

"वह है, वह है। यहां छिपाया है।" दर्शक कहते हैं।

"अरे, यह? यह तो मेरे पैर का अंगूठा है भाई।"

चतुर बाजीगर चादर हटा नंगा अंगूठा हिला, अपने को उससे अधिक बुद्धिमान समझनेवाले दर्शक को एक ही लटके से खिसियाकर धर देता है। ऐसे छोटे-मोटे अनेक रसीले लटकों से वह ओजस्वी वक्ता अपनी मीठी वाणी के मोहपाश में कड़े से कड़े आलोचक को भी बांधकर रख देता था। फिर भी उसके व्यक्तित्व का आकर्षण विधाता की देन भले ही हो, उसकी प्रतिभा देवदत्त नहीं थी। उसके पीछे अथक परिश्रम का एक लम्बा इतिहास था।

श्रीधर ने एक साधारण गृह में जन्म लिया था। पिता थे एक शिव मंदिर के पुजारी और माता को उसके जन्म के मूल नक्षत्र ने उसी दिन डस लिया था। पहाड़ के लाल मोटे चावल को नमक के साथ निगल, वह मीलों के तीखे उतार चढ़ाव पारकर पढ़ने जाता था। आठ ही वर्ष का था कि पिता का साया भी उठ

गया। लोक लाज के भय से, ताऊ ने उसे अपने पास बुला लिया। ताई के दुर्व्यवहार और पहाड़ी पगडंडियों के उतार चढ़ाव ने उसे जीवन के उतार चढ़ाव के दुरूह पाठ को समय से पूर्व ही रटाकर पटु कर दिया था। इसीसे उच्च पदारूढ़ होते ही उसने अपनी समग्र शक्ति अपनी पिछड़ी जन्मभूमि के शिक्षा सुधार की ओर लगा दी थी। यह उसीकी अटूट निष्ठा का फल था कि आज उन दुर्गम शैलशिखरों पर, जहां पहले चिड़िया भी नहीं चहकती थी इतिहास भूगोल और गणित की व्याख्याएं गूंजने लगी थीं। कहीं कहीं पर तो उसने चलते फिरते स्कूल भी खुलवा दिए थे। हिमपात होते ही खच्चरों पर लदा हेडमास्टर, अध्यापक और विद्यार्थियों सहित पूरे स्कूल का स्कूल घाटी में उतर आता। इसीसे एक ही चुनाव की नहीं अगले कई चुनावों की विजय पताका एक साथ सिलवा वह मूछों मे ताव देता, निश्चित बैठ सकता था। गम चूड़ीदार, पट्टू की शेरवानी और नुकीली सफेद टोपीधारी उस सौम्य संत के भाषण के बीच जनता जनार्दन को चूं करने का भी साहस न होता। भाषण के एक एक चुने वाक्य मोतियों की लड़ियों की तरह स्वयं गुथते चले आते। यहां तक कि उसकी किस उक्ति पर तालियों की गगनभेदी गड़गड़ाहट गूंजेगी, यह भी उसे पहले से ज्ञात हो जाता, और वह स्वयं विराम अर्धविराम लगाता रहता। श्रोताओं को कब मात भाषा की फुलझड़ी से गुदगुदाना होगा, कब अपनी अर्जित अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का प्रसंग कैसे छेड़ना होगा कि दर्पोक्ति न लगे, यह सब वह राजनीति का कुटिल खिलाड़ी भली भांति समझता था। सहसा वह दर्पण के सम्मुख, किसीको कुछ न समझने वाली नेपोलियन की गर्वीली मुद्रा में खड़ा हो गया। उसका गर्व मिथ्या नहीं था। जिन ग्रामों में कभी मिट्टी के तेल की बाती भी नहीं दपदपाई थी वहीं आज उसके प्रयास से पहाड़ी की वेगवती अलकनन्दा को बांध विद्युत् प्रवाहिनी उज्ज्वलता बिखेर दी गई थी। पर इस टोपी के ताज ने क्या उसे बिना कुछ किए ही बादशाह बना दिया था? क्या पुलिस की निर्मम लाठियों ने उसकी पसलियों का चूरा बनाकर नहीं धर दिया था? दुर्दान्त गोरे सिपाहियों के बटनों ने क्या उसकी दोनों कमान सी घनी भृकुटियों के बीच लम्बा घाव स्वतन्त्रता के विजय तिलक के रूप में सदा सदा के लिए सजाकर नहीं रख दिया था? और फिर अल्मोड़ा जेल की चारदीवारी में स्वेच्छा से ही बन्दी बना दिया गया उसका यौवन, नैनी जेल की सड़ी गरमी और लू की अविस्मरणीय लपटों से झुलसा दिया गया जवानी का बांकपन क्या सहज में भुलाया जा सकता था? पर क्या केवल देशप्रेम ने ही उसे सर्वस्व त्यागी बनने का आमन्त्रण दिया था? अचानक श्रीधर के उल्लास की ज्योति स्वयं धीमी पड़ गई। क्यों भाग गया था वह गांव छोड़कर? जान बूझकर ही अंग्रेज़ कमिश्नर के बंगले के सम्मुख अनावश्यक धरना देकर क्यों हथकड़ियों को रक्षाबंधन की भांति ग्रहण करने को उसने

ललककर कलाइया बढा दी थी ?

श्रीधर की सफेद टोपी पसीने से तर हो गई।

कल अपने ग्राम के आकाश पर सर से निकलते अपने वायुयान की खिडकी से उसे अपने विस्मत ताजमहल का गुम्बद दीख गया, और रात भर वह सो नही पाया।

एक गहरा नि श्वास उसके होठो को कपाता निकल गया। सिर की टोपी उतार, पखा सा झलता, वह आरामकुर्सी पर लद गया।

इन पच्चीस वर्षों मे भी क्या मुह का कडवा स्वाद नही गया ? कुर्सी पर अधलेटा श्रीधर आखें मूदे, स्वय ही स्मति के घाव को कुरेदने लगा।

तब यौवन का बाकपन उसकी मूछो पर नवागत अतिथि बनकर उतरा ही उतरा था। ताई के दुर्व्यवहार से ऊबकर, वह अपने ग्राम की सीमातवासिनी एक मिशनरी मेम के साथ रहने लगा था। लोग कहते थे कि बुढिया ने उसे अपने साथ गिरजाघर ले जाकर पक्का किरिस्तान बना दिया है। किरिस्तान तो नही, पर विदेशी सतानहीना मेम के स्नेह और अनुशासन ने उसे आदमी अवश्य बना दिया था। मृत्यु से पूव उस नि स्वार्थ वृद्धा ने उसे विश्वविद्यालय की उच्चतम परीक्षा उत्तीण करा दी थी। यह ठीक था कि वेचारी की क्षीण पूजी श्रीधर की शिक्षा मे ही चुक्कर रह गई थी, कितु अपनी अनमोल वसीयत के रूप मे वह अपने सुदशन दत्तक पुत्र के नाम अपनी नम्रता मिष्टभाषण एव निष्कपट व्यवहार का कभी न शेष हाने वाला कुबेर का सा कोप छोड गई थी। इसी वसीयत ने श्रीधर को ग्रामवासियो के हृदय के सर्वोच्च आसन पर विठा दिया। केवल उसीके नही, दूर दूर तक के ग्रामों मे अनोखी सूझ बूझ के उस यायप्रिय युवक की धाक जम गई। जहा पहले छोटी मोटी जमीन जायदाद और जर जेवर की समस्याए लेकर ग्रामवासी अल्मोडा की कचहरी अदालत की धूल फाक्ते थे वहा चुटकियो मे श्रीधर अपने विलक्षण कानूनी नश्तर से उनके विकट से विकट घाव चीरकर रख देता। सवसम्मति से वह ग्राम का नेता चुन लिया गया था। कितु चिता एक ही बात की थी। उनका यह लोकप्रिय नेता एक नम्बर का भगोडा था। कई बार ग्रामवासियो ने उससे अनुरोध किया था कि वह स्थायी रूप से ग्राम मे यायाधीश का पद ग्रहण कर ले, कितु श्रीधर तो रमता जोगी था! आज कालीपार अघोरी बाबा के आश्रम मे तो कल साबरमती। जब कभी वह ग्राम मे आता विविध प्रकार के मुकदमो की पोटलिया उसके प्रागण मे खुलने लगती। किसीने किसीके खेत की तीन-चार सीढिया रात ही रात म काटकर अपने खेत मे मिला ली कोई एक लम्बे अर्से तक फौज म रहा, और उसका सगा भाई उसकी सुदर पत्नी को लेकर भाग गया।

प्रत्येक मुकदमे म वह दूध का दूध पानी का पानी कर देता। लोग कहते थे

कि शिवालय की कोठरी मे एक लम्बे अर्से तक पार्थिव पूजन कर, उसने शिवजी से अनोखा वरदान प्राप्त किया है। उसका अद्वितीय फैसला पक्ष और विपक्ष दोनो दलो को सदा मान्य रहता।

एक बार ऐसे ही एक विचित्र मुकदमे मे उसने अपने ग्राम की उस सैंडी टाम्सन को पहली बार देखा, जिसके सौन्दर्य और दुश्चरित्रता की दिगतव्यापी दंतकथाओ को वह कई दिनो से सुनता आ रहा था। ठीक जैसे ग्राम की नायिका धृष्टा खडी ही लहगा ओढनी पहनकर बैठ गई हो। उसके विरुद्ध मुकदमा दायर करने आई थी स्वय उसकी जुडवा बहन पिरभावती और पीछे पीछे थी पूरे ग्राम की भीड।

"न्याय करो लाल साहब!" विदेशी वृद्धा के दत्तक पुत्र श्रीधर को सब इसी नाम से पुकारते थे। "इसके ससुराल वालो से बैर मोल लेकर मैंने इस नागिन को अपनी आस्तीन मे पाला और ठीक महीने भर मे ही इसने मुझे डस लिया।" और झोटा पकड पिरू न नागिन को खीचकर श्रीधर के पैरो के पास डाल, एक लात जमा दी।

सकोची श्रीधर हडबडाकर खडा हो गया। पर क्षण भर को उसके घुटनो से लगी वह लम्बी, छरहरी, चौडे मर्दाने कधो वाली क्षत्राणी, कपडो की धूल झाडती ऐसे खडी हो गई, जैसे पैर रपटने से गिर पडी हो। न उसके चेहरे पर लज्जा या खिसियाहट की एक रेखा खिची, न उसने उस सार्वजनिक सभा मे किए गए अपमान के विरुद्ध बडी बहन से कुछ कहा। सुन्दर अम्लान चेहरा क्षणिक लाली से रजित हुआ। पर दूसरे ही क्षण वह धृष्टा किशोरी वही पर धरे टीले पर तिनका चबाती ऐसे बैठ गई, जैसे राजरानी हो। भवान स यासी के से उस मुकदमे ने युवा न्यायाधीश को उलझन मे डाल दिया। धर्नसिह की पत्नी पिरू अपनी सुन्दरी जुडवा बहन हिरू को एक माह पूर्व अपने साथ ले आई थी। उसका भगिनीपति गग कुली था। कुछ ही माह पूर्व डायनामाइट ने चट्टान के साथ हिरू के सौभाग्य की भी धज्जियाँ उडा दी थी। तब से नित्य पिरभावती अपनी अठारह वर्षीय बहन के दुर्भाग्य की कहानियां सुन सुनकर व्याकुल हो जाती। आज सास ने अगारे से उसे दाग दिया आज देवर ने माथा फोड दिया आदि-आदि। फिर वह एक दिन उसे स्वय ले आई। पर एक महीना भी नही बीता था कि हीरावती ने बहन की अनुपस्थिति मे उसीके सौभाग्य कोष पर डाका डाल दिया। रगे हाथो पकडा था पिरभावती ने।

उधर पत्नी की दृष्टि म अपराधी धर्नसिह अपने को दूध का धुला बता रहा था। "एक ही घडी मे भगवान ने एक ही नक्शे की दो मूरतें रचकर रख दी तो आप ही न्याय करें, सरकार, दोष मेरा या विधाता का? मैंने जरूर इस छोकरी का हाथ पकडकर इसे छाती से लगाया, पर यह भी तो चुपचाप छाती से लगी

हसती रही। एक सी सूरत, एक सी धोती और एक सी हसी। अब धर्नासिह साला क्या कद्दू का चश्मा लगाए था!"

धर्नासिह का यह कद्दू के चश्मे वाला सस्ता मज़ाक जनता ने बेहद पसन्द किया और एक तुमुल हास्य लहरी को रोकने के लिए स्वय श्रीधर को खडा होना पडा था। "भाइयो, आप सब जानते है कि पचायत मे मुझे हसी ठट्ठा पसन्द नही है। धर्नासिह ठाकुर को जो कुछ कहना हो साफ साफ कहे।"

"अब इससे ज्यादा साफ साफ और क्या कहू, अ नदाता?" धर्नासिह ठाकुर अपनी रसिकता से बाज नहीं आया। "धोती खोलकर नगा हो जाऊ। पचो के सामने अब और क्या कहू? पर गगा की सौं यह छोकरी टुकुर टुकुर मेरी ओर देखती हसती रही। एक बार कहती कि 'मैं तेरी साली हू,' तो क्या मैं इसे छूता?"

टीले पर बैठी अब भी वह छोकरी टुकुर टुकुर धर्नासिह को देखती वैसे ही हस रही थी। श्रीधर ने दोनो बहनो को देखा। सचमुच एक ही ठप्पे पर दो बहनो की सष्टि की गई थी। अतर दोनो म उतना ही जितना एक जोडा ऐसी धोतियो मे होता है, जिनमे से एक तो बिना धुली कोरी ही धरी हो, और दूसरी धोबी की पछाड ने साफ कर दी हो।

"झठ बोलता है बेशरम!" पिरभावती ने घृणा से पति की ओर देखकर कहा, और सीना तानकर पचो के बीच खडी हो गई।

"मेरी हालत देखो लाल साहब!" उसका स्वर उत्तेजना से कापने लगा। "क्या मेरी घाघरी गले से नही बधी है? और क्या इस फटफटी छोकरी का पेट पीठ से नही लग रहा है?"

उसकी किसी चतुर क्रीमिनल वकील की सी इस दलील ने मुकदमे को जटिल बना दिया। अपनी गर्भावस्था के अतिम उभार का समुचित प्रदशन करने के बाद बैठकर वह प्यासी कुतिया सी हाफने लगी।

ठीक ही कह रही थी वह। दोना के चेहरे भल ही एक से हो, शरीर की गढन म किसी प्रकार की छलना के लिए गुजाइश नही थी।

टीले पर बैठी इकहरे शरीर की सुदरी स्वामिनी तिनका चबाती अब भी उतनी ही रहस्यमयी रही। पचो की जरी श्रीधर से विचार विमश करने पास की गधाती गोशाला के पिछवाडे चली गई। अतिम फैसला देने से पूव इस विचित्र अदालत का यही नियम था।

पता नहीं क्या फैसला देगा लाल साहब! उसका फसला सदा बेजोड होता है।

श्रीधर का गभीर कटस्वर पहाडी मन्दिर के दमामे-सी चोट करता गूज उठा था—"भाइयो, पचो के मत से धर्नासिह ठाकुर निर्दोष है।"

"धन्य हो लाल साहब।" धर्नसिह के पाचो पाडवो से भाई टोपिया उछालने लगे थे।

"हो सकता है" श्रीधर कहता जा रहा था, "कि अधेरे मे ठाकुर अपनी साली का चेहरा ही देख पाए हो, शरीर नही। और दोनो बहनो के चेहरो मे तिल रत्ती का भी अन्तर नही है। यह तो आप स्वीकार करेंगे ही ।" सैकडा आखो का फोकस एकसाथ ही प्रमुख नायिका के चेहरे की ओर घूम गया। 'दोष निश्चय ही हीरावती देवी का है। क्या आप घबराहट से चीख नही पाईं ?"

श्रीधर ने अपने इस सहृदय प्रश्न से अडियल घोडी की लगाम मे ढील दी कि शायद इस प्रश्न का सहारा पाकर कह दे कि हा, मैं घबरा गई थी। पर वह तो निरुत्तर सिर नीचा किए, अपनी उसी रहस्यात्मक मुद्रा मे मुसकराती रही। उस उद्दड किशोरी की इस चोरी और सीनाजोरी को देख, न्यायप्रिय श्रीधर का खून खौल गया। इससे पूर्व भी उसके पास, इस दूसरे ग्राम से आ टपकी महामारी सी मारक दुश्चरित्रा हीरावती के उन्मूलन के अनुरोध की प्रार्थना करते कई गुमनाम पत्र आ चुके थे।

'हीरावती देवी, आपका दस मिनट का समय और दिया जाता है। इस बीच भी आप अपनी सफाई न दे सकी, तो पचो को अपना फैसला देना ही होगा।" श्रीधर ने दृढ स्वर मे कहा था।

हीरावती ने बडी उपेक्षापूर्ण दृष्टि से श्रीधर को देखा, फिर द्रोणागिरी के पीछे लाल आग के गोले से डूबते सूर्य की ओर अपनी दृष्टि निबद्ध कर दी, जैसे अस्ताचलगामी सूर्य के साथ ही पचो के निरर्थक प्रश्न को भी डुबो रही हो। दस मिनट तो क्या, दस वर्ष की अवधि दिए जाने पर भी शायद हीरावती उसी दार्शनिक मुद्रा मे मुस्कराती रहती।

हारकर पचो ने फैसला दे ही दिया, क्योकि दोनो जुडवा बहनो का रग रूप एक ही था शरीर के आकार का अतर भी स्थायी नही था, गर्भ भार से मुक्त होने पर पिरभावती फिर अपनी जुडवा बहन का अविकल प्रतिरूप बन जाएगी, और ठाकुर धर्नसिह की अपनी घातक भूल दोहराने की सम्भावना और अधिक बढ जाएगी। इसीसे श्रीमती हीरावती को आदेश दिया कि वे बारह घटे के भीतर ग्राम की सरहद खाली कर दें।

फैसला सुनते ही हीरावती मुस्कराकर श्रीधर की ओर मुह फेरकर खडी हो गई। पहली बार उसने मुह खोला, ठीक है पचो। मैं आज से कोढी साहब के ओडयार मे रहूगी। वह तो आपके गाव की सरहद के बाहर है न ?"

उसने एक बार फिर अपनी रससिक्त मुस्कान से ग्राम के मनचलो को तिल मिलाकर धर दिया। अचानक भीड स्तब्ध हो गई। कहती क्या है छोकरी ? कोढी साहब की गुफा मे रहेगी ? चारो तरफ से मीठे सेब, नासपाती अखरोट

ग्रौर मिहिल के वक्षो से ग्राच्छादित उस लम्बी रेल टनेल सी बनी ग्रधकारपूर्ण प्राकृतिक गुहा मे बहुत पहले एक विदेशी चित्रकार ग्राकर रहने लगा था। ग्रब ग्रामवासियो के कथनानुसार वह गुहा उसी साहब की प्रेतयोनि का स्थायी ग्रावास बन गई थी। ग्रपने बीभत्स महारोग को, ग्रपनी ग्रीक देवता सी सुदर देह म छिपाए वह विदेशी जब गुहा मे रहने ग्राया, तो उसके रोग का कोई भी बाह्य चिह्न देखने म नही ग्राता था। ग्रामवासी उसे 'पादडी साहब' कहकर पुकारते थे। धीरे धीरे किसी खदक मे छिपे कुटिल शत्रु की भाति, उसके रोग ने उसपर ग्रचानक ग्राक्रमण कर दिया, ग्रौर वह निहत्था नही जूझ सका। पहले हाथ की ग्रगुलिया गइ, फिर पलकें। ग्रौर एक ही वष मे वह बुरी तरह लगडाने लगा। कुछ दिनो तक वह ग्रपने ठूठ से हाथो से गुहा भित्ति को ग्रपनी ग्रनूठी कला से विभूषित करता रहा। पर एक दिन विवश तूलिका नीचे गिर पडी। साहब फिर भी सहज म पराजय स्वीकार करने को तत्पर नही हुग्रा। जो कलात्मक हाथ तूलिका को धन्य करते थे उन्होने कुदाली थाम ली। जलना, रामगढ ग्रौर कुल्लू से सुनहरे सेब नासपातियो की पौध मगाकर कोढी साहब ने ग्रपने विकृत हाथो से फल ग्रौर पुष्पो के भावी नन्दनवन की सष्टि कर दी। यह ठीक था कि वह स्वय फल खाने तक जीवित नही रहेगा क्या मीठे कुए का पानी पीकर लोग कुग्रा खोदने वाले को स्मरण नही करेंगे ?

इधर रोग ग्रब छाती पर चढ बैठा था। एक दिन शायद उसकी मानसिक व्यथा शारीरिक व्यथा से भी ग्रधिक ग्रसह्य हो उठी। एक ग्वाले के पुत्र को उसने कभी पढाया था। वही पाव भर दूध नित्य साहब के ग्राले मे धरे मग म उडेलकर जाता था। एक दिन वह ग्राया, तो मग नही था। खिडकी से झाका ग्रौर चीख कर भाग गया। गुहा भित्ति की किसी ग्रदश्य खूटी से टगी, साहब की निर्जीव देह झूल रही थी।

फिर किसीको भी उस ग्रोर जाने का साहस नही हुग्रा। ग्रल्मोडा के ही दो तीन मिशनरी ग्राकर उसीके बाग म उसे दफनाकर चले गए। तब स प्रति वष सेब ग्रौर नासपाती के वैभव से गदराए, कोढी साहब के बाग का व्यथ यौवन ग्रनाघ्रात पुष्प की भाति झर झरकर मुरझा जाता। लोगो का कहना था कि गुहा की छत स झूलता कोढी साहब सध्या होते ही कूद जाता है ग्रौर बडा चौकसी से ग्रपने बाग की रखवाली करता है। उसी ग्रोडयार म सुदरी हीरावती के रहने का ग्रमानवीय सकल्प सुनकर उसकी बहन न कहा, "बहुत देखे हैं ऐसे ग्रोडयार म रहने वाले !"

पर जब तीसरे ही दिन उस दुस्साहसिनी नारी को किसीने साहब के बाग मे सुनहरे सेब बेचने बाजार जाते देखा तो पूरा ग्राम दग रह गया। कुछ ही घटा म वह टोकरी भर सेब बच ग्रपनी नई गृहस्थी बसाने के सामान से भरी पोटलियां

लेकर मुसकाती लौटी तो स्त्रियो मे कानाफूसी होने लगी, "देखा, कितन बडे बम गोले से सेब, श्राडू हैं ! कोढी साहब की हड्डियो की खाद डली है, इसीसे।"

फिर तो हीरावती हर तीसरे दिन भरी भरी टोकरिया सिर पर धर मटकती बाजार को जाती। कभी नासपाती, कभी अखरोट और कभी किसी महादानव की उगलियो सी दैत्याकार भिण्डिया। "लगता है कि कोढ़ी साहब के प्रेत को ही फास लिया है छिनाल न, नही तो ये बे मौसमी भिण्डिया आई कहा से ?" स्त्रिया कहती।

पर उसकी भिण्डिया, चाहे वे इहलोक की रही हो या परलोक की, बिककर चुटकियो म टोकरी शृगार प्रसाधन की सामग्री से भर जाती थी। कभी टोकरी मे धरा चौकोर दपण उसकी समवयस्काओ की आखें चौंधिया जाता। कभी गौर मणालदड से सुकुमार हाथो म चमचमाती लाल हरी रेशमी चूडिया देखने वालो का कलेजा भूजकर रख देती। हीरावती भी जान बूझकर ही अपनी उत्तरोत्तर बढती समद्धि का इधन ग्रामवधुओ की ईर्ष्याग्नि मे झोकती रहती। कोढी साहब के बगीचे से सेबा की लालिमा न उसके सुगोल कपोलो को अपनी अनुपम तूलिका से रग दिया। नित्य के फलाहार ने वनदेवी के सलोने चेहरे की चिकनाई पर नवनीत का प्रलेप कर उसे नवजात शिशु के चेहरे सा सुचिक्कन बना दिया। वह जिस पथ से फलो का निर्यात करने जाती वहा पर जान बूझकर ही ग्राम के मनचलो की टोलिया चक्कर लगाने लगी। एक तो वह जब से उस भुतही गुहा मे रहने लगी थी, उसका मूल्य तरण वग म बहुत बढ गया था। वह गिरिशिखर, शेर और भालुओ का कुख्यात अड्डा था। उस पर तीन मील की तीखी चढाई नित्य पारकर चढना उतरना हसी खेल नही था। फिर दिन डूबे लौटने पर कोढी साहब के प्रेत का सान्निध्य। 'मसान साध रही है चुडैल।" स्वय उसकी बहन ही इधर उधर कहती फिरती। पर गुहावासिनी, विचित्र कपालकुण्डला को किसीकी चिन्ता नही थी। श्रीधर के शिवालय की खिडकी से तुग पवत की शुकनासिका सी मुडी चोटी पर बनी हीरावती की लम्बी गुहा किसी मत गैंडे की मटमैली देह सी पडी स्पष्ट दीखती थी। कभी कभी खद्योन-सा दीपक टिमटिमाता दीख जाता, और कभी गुहा की चिमनी पर मडराती धूम लेखा। 'क्या सचमुच ही मसान साध रही होगी हीरावती ?' श्रीधर मन ही मन सोचता।

पगडडियो से उतरती, उस अनुपम लावण्यमयी ग्राम्या को लोलुप दृष्टि से निहारते, वह ग्राम क कितन ही युवा, प्रौढ यहा तक कि वद्धो क पोपले मुखो को भी लार टपकात दख चुका था। यह ठीक था कि घास के बोझ के थामने मे लचक गई कटि की मोहक भगिमा प्रदर्शन मे स्वय उस मायाविनी की कोई कुचेष्टा नही रहती थी। वह मोहक लचक तो प्रत्यक कुमाउनी घसियारिन की

विधाता का दयदत्त वरदान है। जिस नृत्य प्रवीणा की-सी स्वर-लय के साथ सगत देती चाल की शिक्षा आधुनिक युग की गगन चारिणी विमान परिचारिकाओं को माथे पर पुस्तक धर महीनों बड़े अनुशासन में चाबुक की मार स दी जाती है, उसे कुमायूं की वह पवत कन्या सहज स्वाभाविकता से घास का असह बोझा सिर पर धरते ही सीख लेती है।

ऐसी ही सगीत मुखर चाल के घुंघरू बजाती हीरावती घास का गट्ठर सिर पर धरे उतरती तो आसपास से सीटियां बजने लगतीं। कमर से कसकर बांधा पिछौड़ा कसी वास्कट में गुल गुल जाते वटनों पर पीली पीली मालाओं का उठता गिरता जाल और भुजगप्रयात के स छ द म बंधी मोठी पदचाप। 'अपने सात्त्विक ग्राम से हीरावती की मनहूस छाया हटानी ही चाहिए मुझे।' नित्य श्रीधर अपना एक ही सकल्प दोहराता। पर अब तो हीरावती को उसका न्याय दण्ड स्पश नही कर सकता था। वह तो सचमुच ही ग्राम की सरहद के बाहर थी। इधर भ्रष्टा हीरावती ने उसका सिरदद और बढ़ा दिया था। ग्राम के प्रवेश द्वार मे उसका शिवालय था और हीरावती नित्य वहां से उतरते हुए अकारण ही खासती खखारती शिवालय का घंटा जोर-जोर से बजाने लगती।

शम्भू हरहर।" कहती हुई, वह कभी-कभी उसकी सांकल भी खड़खड़ा जाती 'उठो हो, जज साहब। तुम्हारी कचहरी का टाइम हो गया।"

उसकी ओछी हसी का स्वर श्रीधर को जहर-सा लगता। पर झुंझलाकर वह खून का घूंट पी जाता। एक तो औरत जात ऊपर से ऐसी बेगरत। कौन मुंह लगे। वह रजाई सिर तक खींचकर सोता रहता। एक दिन हीरावती समय से कुछ पूव ही आ धमकी। म दिर का घण्टा शायद उसने जान बूझकर ही नहीं बजाया। रात बीतने ही को थी कि खुसर पुसर सुनकर श्रीधर जग गया। कार्तिक का महीना था। आए दिन शिव मन्दिर म पार्थिव पूजन कर ग्राम की स्त्रियां शिवलिंग को दूध दही से नहला जाती। हो न हो कोई कुत्ता ही शिवलिंग को चाटने घुस आया होगा। श्रीधर ने लाठी उठाई और दबे पांव जाकर खिड़की से झांका। कल भी ठीक आधी रात को एक काली कुतिया दूधिया शिवलिंग को अपवित्र करने घुस आई थी।

'कल तो हाथ नही आई, आज कमर तोड़कर रख दूंगा' सोचता श्रीधर झांकने को बढ़ा। पर वहां तो कोई दूसरी ही छाया अपनी अपावन उपस्थिति से शिवालय को अपवित्र कर रही थी। शिवलिंग के सम्मुख घुटने टेके आंखें मूंदे भावविभोर होकर हीरावती माठे करुण स्वर मे गा रही थी—

नरेणा नरेणा
मेरी कइया नी कइया
करिया नी करिया

करिये छिमा
छिमा मेरे परभू।
नारायण, हे नारायण,
मेरा किया, ना किया,
कहा, अनकहा
सब करना छिमा,
छिमा मेरे प्रभू।

दोनो आखो से आसू की अविरल धारा बहाती, वह शिवलिंग का अभिषेक-सा कर रही थी। नित्य इन्ही आखो से हसने, खिलखिलाने और चिढाने वाली आनन्दी हीरावती आज किस दुख से रो रही है? उस रहस्यमयी नारी के हृदय का भेद लेने को श्रीधर व्याकुल हो उठा। वह धीमे पैरो से बढकर खिडकी के पास सट गया। ओह ग्राम छोडकर जा रही है हीरावती! पास की टोकरी मे उसके कपडे, शृगार पिटारी, बतन भाडे धरे हैं। शायद जुडवा बहन की ममता उसे रुला रही है या ग्रामवासियो का निमम व्यवहार। पर वह स्वय रूपवती हीरावती को रुला सकता है, यह बात वह वीतरागी सयमी युवक स्वप्न म भी नही सोच सका। वह तो चुपचाप स्वय ही अपनी शका का समाधान कर कोठरी मे लौट आया और साकल चढाकर सो गया। तब तक किसी भी विकार ने उसके निष्कलुष चित्त को दग्ध नही किया था। हीरावती उसके लिए एक ऐसा सुदर जगली गुलाब थी जिसे हवा म झूमते देखना कला पारखी चित्त को निश्चय ही रुचता था, किन्तु उसे तोडकर कभी सूघा भी जा सकता है, यह उसने कभी सोचा भी नही था।

दूसरे दिन, तीसरे दिन और कई दिनो तक हीरावती नही दीखी। 'निश्चय कोढी साहब का प्रेत उसे अपने साथ कब्र मे खीच ले गया है," ग्राम की स्त्रिया कहती तो श्रीधर को मन ही मन हसी आती। वह तो हीरावती को माल-असबाब सहित जाती देख चुका था। चलो, अच्छा हुआ। फोडा फूट गया। उसे नश्तर नही लगाना पडा।

पर ठीक महीने भर बाद ही हीरावती एक दिन अपने गिलट के आभूषणो की नकली चमक से अपने यौवन की असली चमक को द्विगुणित करती, ग्राम भर की औरतो की छाती पर मूग दलती, अलस पगो से पगडडी की चढाई चढने लगी तो आगन म खडी उसकी सौत बन गई बहन अपने क्रोध को नही रोक सकी।

'कहा से मुह काला करके लौटी है अभागी? वही क्यो नही डूब मरी ?"
उसने चीखकर पूछा, तो कई स्त्रियो के झुड खिडकियो मे झाकने लगे
बाहर ही बैठा जनेऊ कात रहा था, नये आभूषणो मे जगमगाती

धमककर पलटी, "डूबने ही तो गई थी, दीदी !" वह हंसी और उसके गालों के दो मनोहर गढ़ों पर फहराती स्मर ध्वजा को श्रीधर ने पहली बार देखा। 'डूबने कहां दिया मुए परदेशियों ने ! कहने लगे—'हीरावती, ऐसी हीरे की देह को डुबाता भला कौन है ? इसे तो सजाया जाता है।' यह देखो दीदी, चन्द्रहार, हमेल मूंगे की नेपाली माला, सब ले दी परदेशियों ने।"

घृणा से थूककर, पिरभावती ने द्वार बन्द कर लिए, तो हीरावती अपनी निर्लज्ज हंसी की खनक से पगडंडी गुंजाती चली गई।

फिर कई दिनों तक हीरावती नीचे नहीं उतरी। लगता था कि हमदर्द परदेशियों ने उसके कई दिन तक नीचे न उतरने का प्रबन्ध कर दिया था। कौन जाने, बीमार ही पड़ गई हो ?' श्रीधर सोचता। फिर स्वयं ही झुंझला उठता। उसे क्या ? मरे ससुरी हीरावती। पर झुंझलाने से क्या होता ? रात को गिलट के आभूषणों में जगमगाती मेनका विश्वामित्र के स्वप्नों के रंगमंच पर उतर ही आती और ऐसा उत्पात मचाती कि श्रीधर शिवलिंग के सम्मुख औंधा होकर सुबकने लगता, 'कैसा दंड दे रहे हो, भोलानाथ ? ऐसी नीच स्त्री को पाने को मैं स्वप्नों के शून्याकाश में भी बांह क्यों फैलाता हूं ?"

उसके संयम दुर्ग के किसी अरक्षित छिद्र से ही विकार का यह सर्प घुस आया था। अब इसको कुचलने का एक ही उपाय था। तड़के ही उठकर वह साबरमती चला जाएगा और बापू के पावन चरणों में अपने हृदय में छिपे कुटिल शत्रु को बांधकर डाल देगा। तभी उसे शांति मिलेगी। पर हृदय में छिपा यह चतुर शत्रु क्या सहज ही पकड़ में आता है ? अविवेक, विकार और मिथ्या दलीलों की पुष्ट शाखाओं पर विचरते, इस शाखामृग को मानवीय बन्धन बड़ी कठिनता से जकड़ पाता है। रात ही को श्रीधर ने ग्राम त्याग दिया। पर जिस पगडंडी चढ़ उसे बस स्टेशन पहुंचना था, उसे छोड़ उसने जिस दूसरी छद्मवेशिनी पगडंडी की उंगली पकड़ी, वह अन्तहीन बनती, उसे किसी गहन वन में खींच ले गई। दुरूह पगडंडी की पहेली न समझ पाने से झुंझलाया, क्लान्त श्रीधर एक झरने के पास बैठ सुस्ता ही रहा था कि किसीके कराहने की आवाज़ से चौंका। क्या उसीकी भांति कोई मार्ग भूल गया है ? माघ का महीना था। ठंड से दांत से दांत बज रहे थे। सामान्य सी बूंदा-बांदी अब गर्जन-तर्जनपूर्ण शिला वृष्टि के रूप में चट्टानों पर किसी कुशल तबला-वादक की दक्षता से त्रिताल के से टुकड़े बजा रही थी। वह लपककर पड़ों के झुरमुट को छाता बनाने को बढ़ा, तो कराह की ध्वनि स्पष्ट होकर उसके पैरों से टकरा गई।

"कौन ? " अन्धकार के काले कम्बल ने उसका गला घोट दिया।

"ओह लाल साहब, तुम हो ! बचा लिया, शम्भो ! मैं हूं हीरावती।"

जिन बेड़ियों का बन्धन काटने वह ग्राम छोड़कर भाग रहा था, उन्हीं के

लौहपाश ने उसके दोनो पैरा को जकड लिया। हीरावती एसे सिसक रही थी जसे सिसकी के साथ ही प्राण निकल जाएगे।

"घास काटकर लौट रही थी। मोच ग्रा गई। बस किसी तरह खीच-खाच कर मेरी गुफा मे पटक दो, लाल साहब। तुम्हारे गुण नही भूलूगी।"

श्रीधर ग्रजीब पशोपेश मे पड गया। हीरावती को वह खूब पहचानता था। कही बहाना बनाकर वह छाया ग्राहिणी सिहिका उसे ग्रपनी गुहा मे ग्रपनी लोकप्रसिद्ध क्षुधा का ग्रास बनाने को तो नही खीच रही थी ?

"देर मत करो, लाल साहब! हत्यारा ग्राता ही होगा देखते नही बदबू ग्राने लगी है।" उसने ग्रभय से कहा तो श्रीधर भी चौंक उठा। वनराज की निकट ग्राती, ग्रसह्य दुगन्ध को जन्म से ही वनो मे रहने वाला श्रीधर भी खूब पहचानता था। वह तडपकर झुका ग्रौर भीगी घास पर ग्रसहाय पडी हीरावती को उसने ग्रपनी बलिष्ठ भुजाग्रो मे उठा लिया।

"ग्राह, धीरे पकडो, लाल साहब! पैर म ठेस लग रही है। हाय! मरा हसिया तो उठा लो।" हीरावती ने कराहकर कहा।

"भाड म जाए तेरा हसिया। बोल, कहा है तेरी गुफा ?" झुझलाकर श्रीधर हाफने लगा। हीरावती की गठी काठी का बोझ ग्रसामा य रूप से भारी लगने लगा था।

सहमकर हीरावती 'इधर उधर' करती, कई क्षीण-दुरूह पगडडियो का प्रन्शन करती गुफा तक पहुच गई।

"बस, यही भीतर पटक दा मुझे। भगवान तुम्हे लाट कमिश्नर बनाए, लाल साहब। तुम न मिलते तो ग्रभागा ग्राज मुझे खा ही डालता।"

गुहा मे प्रवेश करते ही श्रीधर को लगा जैसे वह किसी गम दहकती भट्टी के पास खडा हो गया—बाह्य ग्रौर गुहा के तापमान मे धरती ग्राकाश का ग्रन्तर था। हीरावती को नीचे उतारकर, वह रूमाल से पसीना पोछ ही रहा था कि ग्रब तक पगु बनी हीरावती छलाग लगाकर भागी ग्रौर पास ही धरी एक विराट शिला को लुढकाकर उसने गुहा द्वार बन्द कर लिया।

"बाप रे बाप," वह लगडाती हुई चट्टान का ही सहारा लेकर खडी हो गई। 'कभी कभी तो बिल्ली के पजे टेककर ग्राता है हरामी। देखो," उसने श्रीधर को खीचकर दरार के पास खडा कर दिया। 'देखो" वह हसकर फुसफुसाई।

साथ ही साथ एक विकट गजना से वन के ग्रोर छोर गूज उठे। साहसी श्रीधर को भी पसीना ग्रा गया। गुहा द्वार पर लुढकाई चट्टान के पास दाना खूनी पजे टेके, ऋषि मुनियो की जटाजूट सी ग्रपनी सुनहरी ग्रयाल पीताभ स्कधो पर बिखराए कुमाऊ के क्रूर नरभक्षी ने दूसरी गजना की।

'नित्य ग्राकर एसे ही बैठ जाता है हरामी, कि कब मौका लगे

मुझे टप् से उठाकर मुंह में धर ले। एक-एक पंजा देखा ? कितना चौड़ा है—तुमसे भी चौड़ा।"

बड़े लाड़ से हीरावती श्रीधर की हथेली पकड़ने को झुकी, तो वह झिड़क-कर दूर हट गया, "छोड़ो, मुझे जाना है।"

"कहां ?" हीरावती धृष्टता से मुसकराने लगी, "बाहर पंजा टेके तुम्हारा दादा जी बैठा है और इस छोटी खिड़की से तुम्हारे पहाड़ी 'जंतिया' के से कंधे छिटक नहीं पाएंगे। बैठो, मैं आग जलाती हूं, चाय पीकर सुस्ता लो। फिर जाना मैं क्या तुम्हें बांधकर रखूंगी ?"

हारकर श्रीधर बैठ गया। बाहर शायद बर्फ गिरने लगी थी। एक अद्भुत शांति और सन्नाटे से घिरे, गिरि शिखर स्तब्ध खड़े थे। चट्टान के बाहर अडिग भव्यता से विराजे वन केसरी कभी अधैर्य से गरजते, कभी-कभी—धुनिये की भांति अपने धनुष के से कंधे हिलाकर बर्फ की रुई-सी धुनकर फैला देते हैं।

हीरावती ने मशाल सी जलने वाली लकड़ी (छिलुक) को जलाकर चूल्हे के पास गाड़ दिया था। उसी तीव्र शिखा से आलोकित गुहा की चित्र प्रदर्शनी देखकर श्रीधर स्तब्ध रह गया। क्या यह काढ़ी साहब की एक ही दिव्य तूलिका का चमत्कार था ? कहीं कांगड़ा-गढ़वाल शैली की कृष्णवधू, वर्षा मुखरित रात्रि के अभेद्य अंधकार की कुण्डलियां कुचलती, अभिसार के पथ पर चली जा रही थी कहीं एड़ियां टिकाए प्रियतम की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी चौखट में मढ़ी सुप्रिया। कहीं गुजरात की सोलंकी मूर्तिकला की लज्जित करती, दोनों हाथों की चम्पक उंगलियों से नग्न वक्षस्थल ढांपती अप्सरा और अजंता के भित्ति चित्रों के गांभीर्य का जाल बुनती शव द्वारपाल की अविकल प्रतिमूर्ति। खजुराहो और कोणार्क के शार्दूल, सुर-सुन्दरियां, शालभंजिकाएं और अपूर्व सुन्दरी नाग कन्याओं के जाल में भटकता, कला पारखी मुग्ध श्रीधर पूरी गुहा की परिक्रमा करता, चट्टान के उसी द्वार पर पहुंच, हाथ में गर्म चाय का गिलास थामे खड़ी हीरावती से टकरा गया।

गर्म चाय ठंडे पैरों पर छलकी तो वह चौंका।

"लगता है मेरे रनिवास महल ने लाल साहब को मोह लिया है। देखा न बगुला भक्त साहब को ? बड़ा पादरी बना फिरता था। पेट में ऐसी विद्या भरी न होती, तो अकेली गुफा में भला ऐसी वैसी नंगी औरतों की फोटो उतारता ? कहीं अपने ईसा की भी एक तस्वीर बनाई पादरी साहब ने ? लो, चाय पियो। देखूं, चौकीदार गया या नहीं।" श्रीधर को गिलास थमा, उसने खिड़की से झांका।

"गया हत्यारा। कितनी बर्फ गिर गई है। एकदम बदरी केदारनाथ बन गया है। एक बार बर्फ गिरने पर यहां सात आठ दिन तक नहीं गलती। चलो,

अकेली से दुकेली भली।" वह चाय की चुस्कियाँ लेती श्रीधर के पैरों के पास खिसक आई।

मूर्ख हीरावती। वह क्या सोचती है कि श्रीधर कभी बर्फीली पगडंडियों पर चला ही नहीं है? अभी दम लेगी, कि वैसे दोनों हाथ फैलाकर स्केट सा करता, वह हवा के झोंके सा निकल जाएगा। वह चट्टान हटाने को बढ़ा ही था कि बर्फीली हवा के एक तीव्र झोंके ने लकड़ी की मशाल का झपट्टा मारकर बुझा दिया। घने अंधकार में डूबा, वह इधर उधर हाथ पर मारने लगा। जिधर बढ़ता, उधर ही दो सुकोमल बाहों का बंधन उसे जकड़ लेता। एक ही हीरावती के क्या खिलखिलाते-हँसते कई संस्करण बन गए थे? या गुहाभित्ति की सुर सुन्दरियों, अप्सराओं और उनकी नायिकाओं को कोढ़ी साहब के अदृश्य प्रेत ने जीवित कर धरा पर अवतरित कर दिया था? पर मीठा कण्ठ-स्वर तो एक ही कण्ठ का था, और उसे खूब पहचानता था श्रीधर। वह तो निश्चय ही इसी लोक की थी।

'मूर्ख मत बनो।" हीरावती कहने लगी, कहाँ भाग रहे हो? ऐसी बर्फीली रात में तो चिड़िया भी डालों पर अकड़ी मरी मिलती है। फिर तुम क्या सोचते हो, कि मेरा चौकीदार चला गया होगा? तुम्हारी ही ताक में छिपा किसी खंदक में बैठा होगा। ऐसी कंचन-सी देह उस हरामी के पेट में जाने दे, ऐसी मूर्ख नहीं है हीरावती।"

वह पालतू बिल्ली सी उसके कंधे से अपने सुकोमल कपोल घिसती और भी निकट खिसक आई। उसने अभी किसी भी स्त्री का स्पर्श तो दूर उसकी छाया का भी स्पर्श नहीं किया था। वह इस घातक अनुभव से तिलमिला उठा। एक नरभक्षी बाहर था, तो दूसरी नरभक्षिणी भीतर। अचानक उसकी संयमित चेतना सुप्त अग्नि-सी जगकर फुफकार उठी।

"दूर हट, तूने मुझे समझा क्या है?" वह उत्तेजना, विवशता और रोष से बुरी तरह हाँफता, चट्टान उठाने को बढ़ा तो हीरावती दोनों हाथों को बाँधे, मार्ग अवरुद्ध कर खड़ी हो गई, "मैं भी देखती हूँ कि कौन माई का लाल हटा सकता है मुझे।'

जितनी बार श्रीधर उसकी दर्पपूर्ण चुनौती से जूझने को आगे बढ़ता उतनी ही बार सतर्क खड़ी, हीरावती की कांचन सन्निभ देह की दुर्भेद्य प्राचीर उसे बिजली के सौ सौ तारों से झनझना देती। पता नहीं कब तक दोनों रात्रि के सूचिभेद्य अंधकार में साँप नेवले की भाँति अपने सामने सामने तने खड़े रहे। अंत में जीत नेवले की ही हुई।

"आओ," पराजित योद्धा के दोनों हाथ पकड़कर हीरावती ने मृदुल कहा, 'तुमने क्या मुझे इतनी ओछी समझा है? हीरावती में लाख ऐ

कभी झूठ नहीं बोलती । मेरे पास दो पुआल के गद्दे हैं । एक म तुम निश्चित होकर सोते रहना । जो तुम्ह छुए वह साली गोमास खाए ।" हीरावती ने न जाने किस ताक म पुआल का गद्दा उठाकर जमीन पर डाल दिया और उस हाथ पकडकर ऐसे ले चली जस फूल शय्या की ओर किसी सलज्ज बालिका नववधू को ले जा रही हो ।

सचमुच ही झूठ नही बोलती थी हीरावती । दूसरे पुआल के गद्दे को खीच कर पटके जाने की शब्द वेधी क्रिया से सास रोककर लेटे श्रीधर न अनुमान लगाया कि शत्रु पक्ष ने अपने दूसर गद्दे का खेमा गाडने मे व्यवधान रखा था, और उसम उसकी कोई कुटिल चाल नही थी ।

थोडी ही दर म हीरावती निष्पाप शिशु की सी निद्रा म डूब गई । पर श्रीधर व्याकुल करवटें बदलता रहा । अब सोने वाली स्वय ही आग से दूर हट गई तो दूसरी चिता निद्रा अपहरण करने लगी । यह दूसरा पुआल का गद्दा क्यों रखती थी हीरावती ? क्या निशाचर अतिथियो के रात्रि यापन की व्यवस्था का प्रश्न प्राय ही इस गुहा निवासिनी के सम्मुख आता होगा ?

पर उसका माथा क्यो दुख रहा है भला ? ग्राम म हीरावती को कौन नही जानता ? यह कौन सी दूध की धुली सती सावित्री है ?

इसी उधेडबुन म न जाने कब उसकी आख लग गई । सुबह उठा, तो हीरा वती ने शायद खिडकी का पत्थर हटा दिया था । सूर्य का क्षणिक मुट्ठी भर उजाला गुहा मे फैलता गुहाभित्ति की अनूठी चित्रकला का नवीन रूप प्रस्तुत कर रहा था । वह मुग्ध दृष्टि से चित्र प्रदशनी के वैविध्य को देख ही रहा था कि उसकी आखें स्वय हीरावती की ओर घूम गइ । उसे लगा कि झुककर आग फूकती रूपवती हीरावती को वह आज पहली बार देख रहा है ।

हीरावती को भी शायद उसकी मुग्ध दृष्टि गुदगुदा गई । मुसकराकर उसने सिर उठाया तो झेंपकर श्रीधर ने सहमी दृष्टि ऐसे फेर ली जैसे चोरी करते हुए रगे हाथो पकड लिया गया हो ।

'लो, गरम चाय पियो," हीरावती न उस गिलास थमाया और अपना पुआल का एकमात्र गद्दा लपेटने लगी ।

तो क्या अपने सब पहाडी थुल्मे नम्दे उसे ओढाकर वह रात भर ठिठुरती रही ?

'बहुत बफ गिर गई है । तीन चार दिन तक सूरज नही निकलेगा ।" हीरा वती ने खिडकी से झाककर कहा ।

सूय देवता से भी क्या हीरावती की साठ गाठ थी ? चार दिन तक निरतर बफ गिरती रही । चट्टान को भी बफ की मोटी तहा न जम जमकर अदृश्य कर दिया । भीमकाय सिहिल मदार और देवदारु के वृक्ष हिम भार से दातौन स

तड़ाक तड़ाक टूटने लगे। बचपन मे पढ़ी भूगोल की पुस्तक मे चित्रित, अपनी इगलू सी हिमाच्छादित गुहा मे श्रीधर बन्दी शेर की भांति चक्कर लगाता रहता।

'लाख सिर पटको, जज साहब" हीरावती हसकर कहती है, 'एक कदम भी बाहर नही निकाल सकते।"

वसे हीरावती ने अपने रूसे पाहुने की अभ्यर्थना म कोई त्रुटि नही रहने दी थी। न जाने किन अदृश्य आला से वह छोटी मोटी पोटलिया निकालती रहती। दाख, अखरोट, जर्दालू, भुने काजू, खोए के पेडे, सोहन हलुवा, भाड म भुजी पहाडी गेठी और धानी नमक। वह सुरदुलभ खाद्य सामग्री उसकी मेजबान ने रुद्राक्ष की माला जपकर नही जुटाई होगी, यह खूब समझता था श्रीधर। ऐसी हराम की कमाई को वह भला हाथ कैसे लगाता ? दो दिन उसने काली चाय के अधसेरी गिलास गटककर काट दिए। सूखा सा मुह लटकाए हीरावती भी भूखी ही सो जाती। पर तीसरे दिन हीरावती न सोये हुए शत्रु पर ही आक्रमण कर दिया। श्रीधर के उठन से पहले ही उसने न जान किन किन खुशबूदार पहाडी गन्धेणी और जम्बू के ऐसे मसालो से सब्जी छौक दी कि श्रीधर अपने सारे सस्कार और नाज नखरे भुला बिसराकर रह गया। पहाडी घट के पिसे गेहू की सोधी सोधी मक्खन चुपडी रोटी पर सब्जी धरकर, हीरावती ने अतिथि के दोनो पैर पकड लिए, 'क्या भूखे प्यासे बैठे हो लाल साहब! मैं क्या डोमनी हू ? फिर तुम तो गाधी बाबा के भक्त हो। वह तो मेहतरो के हाथ की भी छूत नही मानते।"

इस दलील ने श्रीधर को पराजित कर दिया। फिर तो पता नही एक के बाद एक वह कितनी रोटिया चट कर गया। शायद हीरावती के लिए कुछ बचा ही नही। खा पीकर वह सोया तो कुम्भकरणी नीद पूरी होने का नाम ही नही लती थी।

गुहा के अधकार म रात्रि और दिवस के अतर का प्रश्न ही नही उठता था। पर उस दिन पता नही क्यो, हीरावती ने नित्य की मशाल भी नही जलाई थी। बर्फीली हवा के एक तीव्र झोके से गहरी निद्रामग्न श्रीधर अचानक हड बडाकर उठ बठा। हड्डियो को छेदने वाली इस ठण्डी हवा म ठिठुरती हीरावती बिना कुछ ओढे पुआल के गद्दे पर बैठी होगी, यह ध्यान आते ही श्रीधर को अपन स्वाथ पर स्वय ही क्षोभ हो उठा।

"हीरावती तुम्हारे पास क्या ओढने को कुछ भी नही है ?" उसने पूछा।

जो व्यक्ति तीन दिन से बिना एक शब्द बोले, उस आखो ही आखो मे अपने विकट क्रोध की ज्वाला से निरन्तर भूज रहा था, उसका हमदर्दी मे डूबा बदला गिरगिटी रग देखकर, हीरावती चौकी। पर जैसे तप्त दहकती मरुभूमि मे वर्षा

की पहली बूद पडते ही सूखकर विलीन हो जाती है, ऐसा ही श्रीधर का सरस प्रश्न भी कठ से निकलते ही सूखकर रह गया।

हीरावती ने कोई उत्तर नही दिया। पर अधकार मे ठक ठक कापती मानिनी की व्यथा चार कम्बलो से लदे सोने वाले को छू गई। जिसकी रूप शिखा का स्वप्न कई दिनो तक उसकी नीद मे डूबी पलको को झुलसता रहा था, वही उसी अतहीन माघी विभावरी म उसकी जगी पलको पर साकार होकर थिरकने लगा।

"हीरावती !" उसने थर्राए भराए कठ स्वर से पुकारा। पुरुष कठ के इस भर्राए थर्राए कठ स्वर के आह्वान को तो हीरावती खूब पहचानती थी। विमुग्ध, विस्फारित दृष्टि से अधकार को चीरती मुग्धा अभिसारिका ने एक क्षण का भी विलम्ब नहीं किया।

दूसरे दिन गुहा वातायन का क्षीण कटि से पाच दिन स रूठे सूय न धरा पर गिरी बफ का प्रतिबिम्ब लेकर अपना दपण चमकाया और श्रीधर चौंककर जग गया। उसके कधे पर माथा धरे हीरावती ऐसी अतरग धृष्टता से सो रही थी, जैसे वर्षों स उसी कधे पर सोती चली आ रही हो।

"भारद्वाज गोत्रोत्पन्न श्रीधर शमणस्य सकल ईप्सित कामना।" कुछ ही दिन पूव शिवालय मे पार्थिव पूजन के समय किया गया सकल्प श्रीधर को स्मरण हो आया। हडबडाकर वह उठने लगा।

हीरावती जग गई। "क्या कर रहे हो ? लेट जाओ न। ठड लग रही है।" दोनो हाथो से उसे जकडकर, उसने फिर अपने पाश्व मे सुला दिया।

पल भर को निकला सूय फिर किसी मेघखड मे दुबक गया और तडातड ओलो के चाटे मार मारकर प्रकृति ने एक बार फिर श्रीधर के विवेक को दूर भगा दिया।

हीरावती अब उसे धागे मे बधी काठ की चरखी सा घूमाती, किसी भी दिशा मे उछालकर फिर अपनी ओर खीच सकती थी। वह अब सस्कारी, सुशिक्षित, भारद्वाज गोत्रोत्पन्न श्रीधर शर्मा नही था, वह तो अब सदियो के मलबे से निकला आदिकाल का गुहा मानव था, जिसका न कोई गोत्र ही था, न कोई सस्कार। वह डासी पत्थरो को रगडकर आग जलाना सीख गया था जगली सुखाए भुजे मास को चिचोड चिचोडकर खाने की क्रिया मे वह अपनी गुहा प्रेयसी के हाथ स अधिक चर्बीली बोटी को लपककर छीन, अपने असभ्य जगली ठहाके से गुहा की दीवार गुजा देता। कभी उसे बाहो मे भीच ऐस रख देता था, जसे कीमा ही बना देगा। इस युग का पहला बीटनिक शायद वही था। और हीरावती ? उसीको माडल बनाकर क्या पादडी साहब ने गुहा भित्तिया अलकृत की थी ? बकिम कटाक्ष म दोदरी की लचक सुडौल अग का उभार यदि इच टेप से भी नापे

जाते तो दीवार पर अकित अपूव सुदरियो की काठी मे ठीक बैठती ।

"हीरावती," एक दिन जानबूझकर भी, वह एक मूर्खतापूर्ण प्रश्न कर बैठा। वह तो जानता था कि हीरावती कभी झूठ नही बोलती, "गाववाले जो तेरे लिए कहते है, वह क्या सच है, हीरावती ?"

हीरावती का चेहरा भक पड गया। इतने आमोद प्रमोद के उत्सव के बीच जैसे उसे किसीने झोटा पकडकर जमीन पर घसीट लिया हो।

वह एक शब्द नही बोली। रक्तहीन कपोलो पर टपकते आसुओ ने ही श्रीधर के प्रश्न का उत्तर दे दिया।

बात सच न होती तो क्या मुखरा हीरावती चुप बैठी आसू बहाती ?

एक लम्बी सास खीचकर वह उस दिन बिना खाए ही उठ गया। छि छि, कसी नीच औरत थी हीरावती ! बफ न गिरी होती और मौसम साफ होता तो शायद वह गुफा मे ही हीरावती के एक दो प्रेमियो से टकरा जाता।

उस दिन भी हीरावती न जाने कब तक चूल्हे के पास भूखी बैठी कापती रही। कभी खासता, कभी उसासें भरता, कभी अकारण ही कराहता श्रीधर कर वटें बदलता रहा। पर अन्त म भूखा भिक्षु विवाह भोज के छप्पन व्यजनो की जूठन देख, एक बार फिर अपना विवेक, सस्कार, निष्ठा—सब भूल भालकर जूठी पत्तलो की ओर बढ गया।

"हीरावती !" उसके थर्राए भर्राए कठ स्वर ने पुकारा।

और फिर हीरावती भला क्यो चूकती ?

छठे दिन कडी धूप ने बफ पिघलाकर बहा दी थी। हीरावती टूटे वक्षो की टहनिया बटोरने चली गई थी। खिडकी पर श्रीधर खडा हुआ ही था कि सुदूर घाटी से गूजते शिवालय के घटे की ध्वनि सुन, उसका रोम रोम सिहर उठा। 'पूवकृत पापो ने बहुत दड दे दिया है, प्रभु।"

उसने अदृश्य शिवलिंग की ओर हाथ जोडे, "मुझे क्षमा करो और शक्ति दो।" कहता वह बिना गुहा की ओर दष्टिपात किए, तीर सा निकल गया।

फिर उसन अपने ग्राम की देहरी आज तक नही लाघी। शनि की दशा की भाति उसके जीवन म आ गई हीरावती की क्रूर दष्टि को उसने कवच किलको से प्रवाहहीन कर दिया। एक लम्बे अरसे तक वह देश प्रेम का अनोखा दु साहसी दीवाना बना फिरता रहा। न उसे ललमुहे गोरो का भय था न पुलिस की लाठी का।

एक बार हीरावती का समाचार उसे जेल ही म मिला था। उसीका परि चित एक साथी उसे जेल मे मिलने आया था। 'अपने गाव की हीरावती भी तो इसी जेल मे थी। आज ही बरेली ले गए है उसे।'

हीरावती ! सहसा अलमोडा जेल की काली चारदीवारी पर असह्य सुर-

सुदरिया और नाग कन्याए अंकित हो गइ । 'हीरावती ! वह क्या करने आई है यहा ?' और फिर तो उसके जघन्य अपराध की विस्तृत वणना सुनकर, श्रीधर स्तब्ध रह गया ।

अलकनदा म अपने नवजात शिशु पुत्र की मूडी डबोए, हीरावती को ग्राम के डाकिये ने दखा और जब तक वह भागकर पटवारी को बुला लाया, नन्ही लाश को तीव्र लहरें अदश्य कर चुकी थी ।

"ऐसी वेहया नगी औरत है" उसका साथी कह रहा था, "हमारे गाव की इज्जत मिट्टी मे मिला दी । हाकिम ने पूछा, 'हीरावती देवी क्या यह सच है कि तुम अपने बच्चे की मूडी नदी म डुबोए वैठी थी ?'

" सिर झुकाए वैसे ही मुस्कराती रही हरामी, जैसे तुम्हारी अदालत म मुस्कराती रही थी।

" 'किसका था ?' हाकिम ने पूछा, तो बोली 'सरकार, आप तो दिन रात पहाडा का दौरा करते हैं। कई झरनो का पानी पीते हागे । कभी आपको जुकाम भी हो जाता होगा । क्या आप बता सकत हैं कि किस झरने के पानी से आपको जुकाम हुआ है ?'

" कटकर रह गए हम लोग अब भुगत रही है, हत्यारिन !"

आज इतने वर्षों पश्चात उसी हत्यारिन की स्मति श्रीधर को विह्वल कर रही थी । क्या अब भी वही रह रही होगी ? क्या सचमुच ही उन सुकुमार हाथा न अलकनदा की तीव्र हिमशीतल लहरो म किसी न ही सी देह को निममता से बहा दिया हागा ?

श्रीधर ने हाथ की घडी देखी । भाषण की एक भी आवत्ति पूरी नही कर पाया था । न जाने किन किन चि ताओ के गडे मुर्दे उखाडने म स्वय ही सिर दद मोल ले लिया । चि ताए भी क्या एकाध थी ? रुग्णा पत्नी का चिडचिडा, विलासी स्वभाव उसे बुरी तरह उबा देता और वह वन बिलाव सा अनावश्यक दौरो म जगलो की खाक छानता फिरता । चारो पुत्रियो का विवाह कर चुका था, पर चारो जामाताओ की ठगी प्रथा को विलियम बेंटिक की ही भाति जड से उखाडने के प्रयत्न मे वह घर भर से बैर मोल ले चुका था । उधर इकलौते पुत्र ने लडकियो के से बाल बढा लिए थे और पुरखो की कुल कीर्ति पर झाडू फेरकर रख दी थी । विद्यार्थियो की हडताल हुई तो काला झडा लिए उसके कुल-दीपक ने ही स्वय पिता का पुतला जला, विद्यार्थी समाज मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था । जहा नेता का पद प्राप्त करने मे पिता को सवस्व त्यागना पडा था, वहा पुत्र न तीन ही दिन म सात बसें जला, असख्य सरकारी इमारतो के वेंच तोड एक रेलगाडी उलट नता का सर्वोच्च पद अनायास ही प्राप्त कर लिया था । उसी अशाति स बचने श्रीधर, सिर मुडाकर घर से भागा, तो ओले पडने

लगे। अपनी जन्मभूमि के सूखा ग्रस्त इलाके का हवाई दौरा करने निकला, और उस विस्मृत घाटी में खण्डाड से ताजमहल के गुम्बद न दबे नासूर को फिर उभार दिया।

'सारी, सर!" पी० ए० ने खिसिआए विवश स्वर में कहा, "आपसे मिलने एक पगली सी औरत आई है। कहती है कि आप ही के गाव की है। बस दर्शन करके चली जाएगी। मानती ही नही।"

पी० ए० अपना वाक्य पूरा भी नही कर पाया था कि पगली सी औरत सिर पर मैली पोटली मे गुड की भेली बाधे सजे कक्ष के रेशमी पर्दे के पास फटे पैबन्द सी चिपक गई।

'यह कैसे आ गई यहा? क्या मेरी इच्छाशक्ति इसे खीच लाई?' मन ही मन श्रीधर सोचने लगा। पर विरोधी पक्ष की दुधारी तलवारो से दिन रात जूझने वाला सेनानी चौकन्ना हो गया। उसका पी० ए० एक नम्बर का घाघ था। कही हीरावती के कलुषित अतीत का आंशिक विवरण भी सुन लिया होगा तो प्रेस रिपोटर की सतर्कता से मन की कलम सभाल ली होगी पटठे ने। और दिन रात अपने कई सहकर्मियो की चरित्रहत्या को क्या स्वय दिन दहाडे नही दग चुका है?

'आओ आओ बहन हीरावती," उसने हसकर कहा।

हीरावती चौकी। अब तक वह मुग्ध दृष्टि से श्रीधर के विलासी कक्ष के भित्ति चित्रो को ठीक वैसे ही देख रही थी जैसे पच्चीस वर्ष पूर्व श्रीधर ने उसकी गुहा भित्ति को देखा था।

'बैठो, हीरावती।" बलात स्वर म अब प्रणयी का घर्राया आह्वान नही था। यह तो एक थका मादा पथिक दूसरे पथिक को दो घडी साथ बैठकर सुस्ताने का स्नेहपूर्ण निमन्त्रण दे रहा था। पर सकुची सिमटी सी हीरावती मखमली सोफे पर नही बैठी। वह सिर की पोटली बिना उतारे ही, श्रीधर के चरणो के पास ऐसे बैठ गई, जैसे गली के शरारती छोकरो के ढेले-पत्थरो से नित्य मारकर भगाई गई कुतिया को बहुत दिनो से बिछुडे मालिक ने पुचकारकर बुला लिया हो, और वह डरती हुई बडे अविश्वास से आगे बढ रही हो।

'हीरावती, तुम चुप क्यो हो?" श्रीधर का गला भर्रा गया।

इतने वर्षों बाद भी इस अलौकिक नारी की उपस्थिति उस झूमते सम्मोहित नाग सा झुमा रही थी।

कितनी भटक गई थी हीरावती। फिर भी छरहरे बालो म चादी चमकने लगी थी। होठो की मधुर लालिमा नीली पड गई थी। निमग्न नयनो की काली भवर पुतलियो ने कितनी पीडा सही थी, उसका लेखा जोखा लिखने म अनाडी विधाता ने स्याही आखो के ही नीचे फैलाकर रख दी थी। फटी वास्कट पर

पुष्पहार

रोग की विषम व्यथा न बडी डोरीदार आखो को किसी गजेडी की आखो का सा रक्तिम बना दिया था। बढी दाढी और ऊबड खाबड मूछो से झाकते पपडियो से बीभत्स बन गए सूखे होठो को उसने चाटा और पेड के मोटे तने का सहारा लेकर बैठ गया। लगता था दयालु ड्राइवर और क्लीनर उस बेहोशी म ही उस दानव से वक्ष की उदार छाया म लिटा गए थे। एक ठण्डी हवा का झोका उसे सिर से पैर तक सहला गया। कहा गई पेट की शूल वेदना और कहा गई पैर की सूजन ? कौन सी जगह थी भला यह ? बाडेछीना ही तो था वह, आसन्नमृत्यु भी क्या उसकी स्मति को धुधला कर सकती थी ?

दयालु ट्रक ड्राइवर सरदार से उसने हाथ जोडकर भीख मागी थी–'बस, *बाडेछीना तक पहुचा दो सरदार जी ! अपने गाव के किसी पेड के नीचे भी* जाकर लेट जाऊगा तो ठीक हो जाऊगा ड्राइवर साहब !"

सीमेट के बोरो पर सिर रखते ही शायद वह बेहोशी मे डूब गया था। जब से कोयले की खान का धमाका उसे पेट का यह शूल रोग दे गया तब ही से मिरगी सी यह बेहोशी भी पीछे लग गई थी। पर आज उसकी सारी *व्यथा* चुटकियो मे स्वय उड गई।

नीले समुद्र सा उदार नीलाकाश, दोना ओर स प्राचीर सी उठी घाटिया के बीच किसी त वगी सु दरी अल्हड किशोरी सी थिरकती नदी, आस पास फली चौडी हरीतिमा, जैसे डबल अज की हरी इटलीन का पूरा थान खुला पडा हो। क्या यह सपाट मैदान रानीखेत के प्रसिद्ध गोल्फ कोस से कुछ कम था ? नदी के कगार पर खडा शक्तस्वर का अर्वाचीन मन्दिर, नदी मे नगा नहाता म दिर का पगला पुजारी, पहाडियो पर घरौंदे से चमकते सुपै और तिलाडी के गाव, गले मे गदे फटे बस्ते लटकाए स्कूल से लौटती कलरव करती ग्राम्य बालको की टोली, इसी टोली के साथ सात मील पैदल चलकर उसने भी तो इसी ग्राम पाठशाला मे पढा है। फिर क्या वह इसे पहचानने मे भूल कर सकता था ?

अपने ही पौरुष की बैसाखिया टेकता वह मेधावी छात्र जब एक दिन अचानक ही छलाग लगाकर देश का मत्री बन गया तो किसीको भी आश्चय नही हुआ। पर उसकी क्षणभगुर समृद्धि की अकालमृत्यु का कारण भी यही छलाग बनी। जसे अचानक डबल प्रमोशन पा गया मेधावी छात्र भी कभी कभी

एक साथ मिल गई दो कक्षाओं की समृद्धि को नही समेट पाता और एक बार फिर नीची कक्षा मे उसका प्रत्यावर्तन हो जाता है, ऐसा ही उसके साथ भी हुआ। जनता ने जिस उत्साह से उसे गेंद सा ऊपर उछाल दिया था, उसी उत्साह से नीचे गिरा भी दिया। आज सडक से लगे जिस पागर वक्ष की छाया मे वह लावारिस लाश सा पडा था, कभी उस सडक का उदघाटन उसीने किया था। ग्राम के खभो म झूलते बिजली के नये तार, नये नये बरताये किशोर वटुक ब्राह्मण की नगी छाती पर सुशोभित नये यज्ञोपवीत की डोरियो से ही चमक रहे थे पर किसकी योजना थी यह ?

मत्री की आखें छलछला उठी। कितन विरोधी सदस्यो के चक्रव्यूह म अभिम यु बनकर उसने अपने चिरदरिद्र ग्राम के लिए इस योजना की भीख मागी थी। शत सहस्र समृद्ध हाथो से करमदन करत करते उसकी कलाई दुखने लगी थी। लक्ष लक्ष भारी पुष्पहारो के असह्य भार से गदन टूटकर रह गई थी। कितने ओजस्वी भाषण, कठ की कैसी गुरुगजना थी उसकी ! स्वदेश की गिरि-कदराए जाने गूजकर सहम जाती। बाकपन से झुक आया घुघराले बालो का गुच्छा चौडे माथे पर सदा एक ही अ दाज मे बिखरा रहता। वह पूरे मत्रिमडल का सबसे छोटा और सबसे मुह लगा सदस्य था। पहाडी क्षेत्र के एक समद्ध जमीदार परिवार का सबसे छोटा दुलारा बेटा, जिसे प्रजातत्र के सहमे नागरिक फल की छडी से भी नही छू सकत। यह ठीक था कि जनता जनादन कभी भी उस जमीदारी का उ मूलन कर सकती थी और उसका भविष्य भी किसी उजड जमीदार के एयाश पुत्र की ही भाति अ धकारमय हो उठेगा पर उसके उवर मस्तिष्क की धरा सोना उगलने वाली धरा थी। उल्टे हाथ स भी बीज बिखेर देगा तब भी हरी भरी फसल ही लहलहाएगी यह वह जानता था।

वसे तो वह राजनीति की सिद्धान्त कौमुदी मा के गभ से ही रटकर आया था पर सबसे प्रमुख सूत्र का एक पष्ठ शायद उसन बिना पढे ही उलट दिया। लोकप्रियता की अमर बूटी खाकर आए घाघ स घाघ राजनीतिज्ञ को भी निर्दोष पुष्प मे छिपे सप की भाति नारी का सौदय विषधर डसने पर पल भर मे ही अपन घातक विष से निर्जीव बना धरा पर लुढका सकता है यह वह जानता था। उसका ज म पहाड के एक निम्न मध्य-वर्गीय ब्राह्मण परिवार मे हुआ था पर उसकी अकड बाकपन बोल चाल उठक बठक नम्रता, किसी म भी रग रूट का नयापन नही था। उसका डीलडौल लम्बा, रग आकषक रूप से गेहूआ और आखें बडी बडी थी। पतली मूछो से मेल खाती तीखी नासिका के बीच बीच मे फडकते पतले नथुन उसके क्रोधी स्वभाव के परिचायक थे पर विलासी मोटे अधरो पर बात बात मे थिरकने वाली उज्ज्वल हसीयुक्त चेहरा देखकर मानवस्वभाव की गुत्थिया सुलझाने वाले को भी उलझन म डाल दती थी। यह

व्यक्ति क्रोधी भी हो सकता था और शिशु सा सरल आनन्दी भी। चेहरे का मुख्य आकर्षण था उसका कण्ठ और कंठ का आश्चर्यजनक बचपन।

दो वर्षों की छोटी सी अवधि में नियति उसे दंतहीन असहाय शिशु की ही भांति गोदी में उठाकर किसी जादूगरनी की सी उड़ान में लोकप्रियता, समृद्धि और वैभव के सर्वोच्च शिखरों पर उड़ाती रही थी पर उसी क्रूर खिलवाड़ की सनक में उसने उसे धरा पर पटककर रख दिया और आज वह ऊंची उड़ान में उड़ती चील के मुंह से गिर क्षत विक्षत अधमरे सर्प सा ही एक बार फिर अपनी उसी जन्मभूमि पर पड़ा था जहां से नियति उसे चोंच में दबाकर उड़ गई थी। जिसका घातक विष, लपलपाती जिह्वा और कृष्ण नाग का सा फन कभी पर्वत से शक्तिशाली शत्रु को भी एक ही डंक से परलोक पहुंचा सकता था, आज दुर्भाग्य की नन्ही चींटियों से नुचा वहीं विवश पड़ा था। क्या पता, उसकी मां ही अचानक इस मार्ग से निकल पड़े! पर इतने वर्षों तक क्या वह उसी गांव में बैठी होगी? हो सकता है अपने भाई के पास चली गई हो। पर वह अपनी मां की जिद को जानता था—प्राण रहते वह अपनी थाती नहीं छोड़ पाएगी। वह पुत्र के मंत्री बनने पर भी, उसके लाख समझाने पर भी उसके साथ उसकी बड़ी कोठी में रहने लखनऊ नहीं गई थी। जब बेटा देश का राजा बना तब भी वह दूर दूर के जंगलों में कुतुबमीनार से ऊंचे पहाड़ों देवदार और अयार वृक्षों की सर्वोच्च शाखाओं पर शाखामृगी बनी लकड़ियां तोड़ती, कभी बकरियों के लिए पइयां की पत्तियों के स्तूपाकार गट्ठर के नीचे दबी ऐसी दुहरी होकर घर लौटती कि बिवाइयों से फटे दो पैर ही पैर दिखते। लगता, कोई हरी भरी पहाड़ी ही चली आ रही है।

उस दिन वह चुपचाप एक परिचित मित्र की जीप मांगकर मां से मिलने चल दिया। टोकरी भर दशहरी आम भी वह उसके लिए ले जा रहा था। उसकी मां को आम बेहद पसन्द थे और अपने अभावग्रस्त शैशव की स्मृति को मां भी भूला नहीं था जब मां-बेटे बारी बारी से एक ही आम को चूस उसकी गुठली का भी मुंडन कर रख देते थे।

चार बालिश्त की तंग सड़क पर नाचती, गोल घूमती जीप को पहाड़ी दक्ष ड्राइवर ऐसे नचा रहा था, जैसे चतुर नट पिता ढोलक की थाप के साथ पतली रस्सी पर अपने पुत्र को नचा रहा हो। कभी घर से गाड़ी घूमती, एक साथ कई चक्कर खाती, उस्तरे की धार सी तीखी सड़क पर फिसलने लगती और मंत्री का लोहे का कलेजा भी धड़कने लगता। उसे लगता, जीप अब खाई में गिरी और अब खंदक में। पर दूसरे ही क्षण तीखी चढ़ाई पर हांफती, कांपती शिथिल फुफकारें छोड़ती जीप मृतप्राय इक्के की मरियल घोड़ी-सी ही पराजित

हा तीन चार कदम पिछड जाती। वृद्ध इक्के के चालक की भाति ड्राइवर भी लगाता और अनुशासनपूर्ण ग्रनुभव के इशारे चालक से सहमी गाडी एक बा फिर तीव्र गति से भागने लगती। वह उसी तीव्र गति से भागी जा रही थी एक अप्रत्याशित मोड पर धूल उडाती भेड बकरियो के झुड को पहियो के नी ग्रान से बचाने के लिए मोड से स्वय उलटते उलटते बच गई। कुशल चाल का चेहरा क्रोध से तमतमा गया। पल-भर भी चूकता तो गाडी ही नही, उसव नौकरी भी चली जाती। मत्री भी बौखला गया था, झटके से उसकी कीमत घडी टूटते टूटते बची थी और जीप के लोहे से टकराकर माथ मे गूमड उभ आया था। पर उन भेड बकरियो के पीछे दो पतली गोरी बाहे फैलाए जी की गति से भी तेज भागती किशोरी को देखकर चालक और मत्री, दोना कठो की भर्त्सना कठो ही म अटककर रह गई।

एक पल को दोना उस देखत ही रह गए। भेडियाधसान री धूल धूमिल ग्राकृति अब स्पष्ट होकर बडी धृष्टता स उनके सम्मुख खडी हो र थी। वह ड्राइवर से कहने लगी, "क्या करू, ड्राइवर ज्यू वक रा हरामजादिर को डडा मारकर किनारे कर रही थी! वैसे यह घुमाऊ यूनियन की गाडी का टैम भी नही था, नही तो मोटर टम म मैं खुद ही इन्ह चराने नही लाती।"

स्वय मत्री का गाव एक से एक सुदरी चाचियो, ताइयो और भाभियो भरा था। चद राजाग्रो के समय से ही उसके ग्राम की ग्राम्याग्रो के सौदय क ख्याति दूर दूर तक फैलती ग्राई थी और इसीस शायद नाम भी पड गय था रतनपुर। पर यह लडकी क्या रतनपुर की थी? कसा पहचाना पहचान चेहरा लग रहा था, फिर भी नाम क्यो याद नही ग्रा रहा था भला वही ताऊ के लडके धरणीधर दा की साली तो नही थी यह, जिसके रूप क चर्चा सुनत सुनते उसके कान पक गए थे और मा भाभी क परम ग्राग्रह स ल गए जिसके रिश्ते को उसने खाटे सिक्के सा फेर दिया था?

'ऐसे मोटर सडक पर बकरिया लाती ही क्यो हो?" ग्रब तक मत्री बार उस बित्ते भर की छोकरी न ग्राख उठाकर देखा भी नही था ग्रौर व चालक से ही हस हसकर बातें कर रही थी। वह मत्री को ग्रखरा, इसीस को रोबीला बनाकर उसने गभीर स्वर मे गर्जना की, "ऐसे इन्हें मत ला करो!" किशोरी ने चमककर तेजस्वी चेहरे की ओर दृष्टि उठाई। कैसी ग्रकडी मुद्रा उससे मूक प्रश्न पूछ रही थी—दिखती नही, किसकी गाडी है यह मूर्ख लडकी, क्या हाथ भी नही जोड सकती?

तब कैसे लाऊ जो?" हसकर उस पुष्ट किनारो न पूछा। माती उज्ज्वल दतपक्ति के दपण ग कुमारे मत्री की ग्रनभ्यस्त आँखें चौंधिया।

'इन बकरियो को भी जीप म बिठाकर चराने लाऊ क्या?"

मन्त्री की दृष्टि अब गोरे ललाट पर बधे, ओढनी के फेंटे से उतरकर कैशोर्य से उज्ज्वल दो आखो से फिसलती, तीखी नाक और फिर लाल रस भरे अधरो से सरक, तनी वाम्कट पर उभर सहसा सपाट होकर झूलती चादी की जजीर पर निबद्ध हो गई। सूर्य की प्रखर किरणो म जजीर झिलमिला रही थी। किसी क्षीण पहाडी जलप्रपात की दो पतली रुपहली युगल धाराए जैसे दो कठोर शिलाखडो पर क्षण भर विराम करती फेनिल राशिभूत तरगो म बिखर गई थी। "किस गाव की लडकी है तू ?" मत्री ने डपटकर पूछा। अब निश्चय ही सहम जाएगी छोकरी। "रतनपुर की है क्या ?"

क्यो ?" पतली नाक को उसने एकदम कपाल पर चढा लिया। लगता था, अभी अभी जीभ निकालकर मुह चिढाने लगेगी। 'क्या रतनपुर म ही सब 'बान' (मुदरिया) बसती हैं ?" और फिर वह धृष्ट उत्तर के साथ भुवन मोहिनी हसी का जाल बिखेरती, एक बार भी पीछे मुडे बिना चली गई।

विरोधी पक्ष की निर्मम घूसबाजी ने भी कभी मत्री को ऐसे धराशायी नही किया था। फिर जिस सरकारी जीप के चालक के सम्मुख वह उसे चुटकियो मे उडाकर रख गई थी, वह भी मूछो ही मूछो मे मुसकरा रहा था।

'तुम जरा रुकना, ड्राइवर !" उसने बडी आत्मीयता स कहा, जैसे वह मत्री नही, स्वय ड्राइवर का ही बडा भाई हो। "बडी भूल हो गई पहचानने मे ! यह तो हमारे धरणीदा की साली है। चलकर जरा भाभी की कुशल पूछ आऊ।"

'गाडी मोड लू, सरकार ?" घाघ चालक भी शायद समझ गया था कि प्रभु भाभी की नही, भाभी की सुदरी सहोदरा की ही कुशल पूछने भाग रहा है। कभी गाडी मोडने का आदेश नही देगा।

'नही नही, तुम यही रुके रहना, हम अभी आते हैं।" चलते चलते मन्त्री ने दोनो हाथो मे ढेर से आम भी भर लिए।

'निकाल ले, निकाल ले !' हसकर मन के चोर ने कहा, डरता क्यो है ? मा के उपहार की टोकरी से किसी दूसरी के लिए मीठे फल चुराने वाले, क्या तू ससार का पहला पुरुष है ? यह चोरी तो प्रत्येक ससारी पुत्र करता है रे।' वह उस दिशा की ओर लपका।

लडकी बहुत दूर नही गई थी। तेजी से मुड गए एक दूसरे मोड के टीले पर वह पीठ किए बैठी थी, सूखे पत्तो की चर मर सुनकर वह चौंकी।

तुमसे माफी मागने भागता आया हू दुर्गी ! माफ करना इतने सालो बाद तुम्हे देखा, इसीस पहचान नही पाया !'

पर वह रूठी गर्वीली राजकन्या सी नि शब्द उसी टीले पर बैठी रही। उस मुग्धा मानिनी की अनूठी छवि मन्त्री के वर्षों से अधकारपूर्ण हृदयकक्ष म

बिजली सी कौंध गई। घुटनों से कुछ ही नीचे तक लटका काला लहगा किसी विदेशी आधुनिका की मिनी स्कर्ट के सेक्सौदार्य से साचे में ढली नगी सफेद टागो का उन्मुक्त प्रदर्शन कर रहा था। दोनो हाथो से गोदी में नन्हे मेमने को साधे वह सौंदय लक्ष्मी ऐसे तनकर टीले पर बैठी थी कि स्लेटी पत्थर का रूखा टीला रत्नखचित राजसिंहासन सा दीप्त हो उठा था।

"माफ कर दिया ना ?" मन्त्री के कठ मे कुछ अटक सा गया। वह दीन याचक की मुद्रा मे एक बार फिर हसकर और निकट खिसक आया। पर वह तनी बैठी रही। सुडौल कधा का उसने उदासीनता से किसी विदेशी चलचित्र की तारिका की भाति हिलाकर गर्दन फेर ली। मन्त्री अवाक रहा। जो छोकरी कभी मोटर पर भी नही चढी होगी उसने ऐसे विदेशी अदाज म कधे झटकना कैसे सीख लिया ? जिस मुद्रा का, वे विदेशी नायिकाए शायद निर्देशक के चाबुक की मार से सीखती है, उसे प्रकृति ने अपनी इस मुहलगी पुत्री को स्वय ही सिखा दिया था। स्पष्ट था कि उस क्षमादान नही मिला।

सात वर्ष पूर्व अपनी इसी अनाथा रूपवती बहन को लेकर, भौजी उसके पास आई थी। तब वह क्या जानता था कि भाभी की वह नाक सुनकती मरियल सी बहन एक दिन ऐसी बन उठेगी ?

"बहुत सुदरी है मेरी बहन ! ठीक से देखोगे तो आखें नही फेर पाओगे, लल्ला !"

"सब बडी बहनें अपनी कुआरी बहनो के लिए यही कहती हैं, भौजी !" उसने वह प्रस्ताव हसकर वही फर दिया था।

"भौजी के लिए थाडे से आम लाया हू दुर्गी। कहना, कल मिलने आऊगा," मन्त्री ने आम उसके परो के पास धर दिए और हसकर कहने लगा, "गगोली हाट की इष्ट काली के चरणो मे फल रख रहा हू। देवी, प्रसन्न हो ना ? भक्त हाथ बाध खडा है !"

अपनी बडी-बडी आखें उठाकर उसने मन्त्री को देखा। वह सचमुच ही हाथ बाधे धृष्टता से हस रहा था।

उसकी यही हसी तो उसके मधुर स्निग्ध व्यक्तित्व का सुनहला चौखट थी। इसकी हसी के आकर्षण से प्रत्येक चुनाव म विपक्षी दल के शत सहस्र वोट भी उसीकी झोली म आकर स्वय गिर जाते। उसकी यही हसी शत्रु और मित्र दोनो को समान रूप से बाध सकती थी। इसी हसी के आकर्षण से उस दिन रात न जाने कितने महिला मडलो की गोष्ठियो के रगीन रिबन काटने इधर-उधर भागना पडता और पुष्पहारो के भार से गर्दन टूटकर रह जाती।

यहा तक कि कई विश्वविद्यालय उसे एक साथ दीक्षात भाषण के लिए

न्योत चुके थे। जहा अन्य सम्मानित अतिथि वर्षों की देश सेवा, जेल-यात्रा आदि का पासपोर्ट-वीसा दिखाने पर भी पल भर छात्रों की हूटिंग के सम्मुख नही टिक पाते, वही पर यह हसमुख मत्री केवल इसी स्मित के इन्द्रजाल से अनुशासनहीन छात्रों को बाधकर बगल म दबाए चला आता।

इस बार भी उस हसी की मूठ व्यर्थ नही गई। वह हसने लगी और युवा मत्री का कलजा जिह्वाग्र पर आकर धडकने लगा।

तुमने मुझे नही पहचाना पर मैंने तो तुम्ह देखते ही पहचान लिया !" उसके गले म बीच बीच म होता स्वरभग मत्री को मिश्री की डली सा मीठा लगा।

तुम्हारी शादी हो गई क्या ?" उसका उतावला प्रश्न उसके कठ से अनजान म ही गोली सा दग गया।

प्रश्न पूछते ही वह अपदस्थ हो सकोच से लाल पड गया।

क्या तुम सोच रहे थे तुम्हारे लिए अब तक कुआरी बैठी हू ?' वह हसकर उठ गई।

हाय, यह बित्ते भर की छोकरी उस राजनीतिज्ञ खडपेंच को कैसा पिस्सू सा मसल रही थी ! खर, वह भी उस गर्वीली छोकरी के विष के दात तोड सकता है अभी बहुत अवसर आएगे। वह बोला, "अच्छा, चलता हू दुर्गी ! कल स्कूल के मदान म मरा भाषण है। तुम भी आना और भौजी को भी लाना, समझी ?"

उसने बडे गव से, चौडी कलाई म बधी कीमती घडी को देखा और सिर की तिरछी टोपी और भी तिरछी कर ली।

"और इसे ? इसे भी ला सकती हू क्या ? यह तो मुझ एक पल भी नही छोडता !" अपने पैरो के बताशे से सफेद टखने चाटते छोटे नम दूधिया पशम वाले मेमने को उसने उठा गालो से लगाकर पूछा। तब कठिन से कठिन परिस्थितियो मे भी मन को सदा चाबुक की मार से साधने वाला जितेंद्रिय तरुण हठयोगी न ही ठोकर से दूर घाटी म क्षण भर पूव गिर गए आम क दाने की ही भाति लुढकता, अविवेक की घाटी मे गिरकर चकनाचूर हो गया। कैसी निर्दोष मुद्रा म पूछा गया कैसा साकेतिक आमन्त्रणपूर्ण प्रश्न था ! लाल लाल कदील से लटक रहे बुरुश पुष्पो की छाया मे वह ऐसे मादक स्मित का आह्वान देती खडी हो गई मत्री का लगा, वह मिसलटो क नीचे खडी प्रणयोन्मद मत्ता कोई विदेशी स्वयदूती है। किस प्रसिद्ध चित्रकार का ऐसा ही चित्र देखा था उसने ? रविवर्मा, रावल या किसी विदेशी चित्रकार का ? गोद म नन्हे मेमने को गालो से सटाकर जाना पहचाना सा स्वर्गीय स्मित ही उस ले बैठा। जिसने कभी नारी की छाया का भी स्पश नही किया था और जिस बहुचर्चित स्पश

की कभी स्वप्न मे भी कामना नही की थी, वही आज पागलखाने से भाग निकले मत्त उन्मत की भाति मेमने सहित स्वामिनी को अपनी सशक्त बाहो मे भरकर बार-बार चूमना हाफ हाफ गया। जिस सयम अकुश से वह वर्षों की प्रमानवीय साधना से अपने पौरुष के मत्त गजराज को साधता आया था वही अकुश आज पचसार से विधा दूर पडा था। पुरुष के अधर नारी अधरो के प्रथम स्पश के नीचे किसी किशोरी के कुमार अधरो की भाति थर थर काप रहे थे, जैसे पहली बार ससार का निकृष्टतम पाप किया हो। और नारी के रसीले अधरों पर था स्वाभाविक स्मित, जैसे कुछ हुआ ही नही हो। ठीक ही तो था, वह क्या उसका पहला चुबन था!

मन्त्री तटस्थ होकर पीछे खिसक गया। उसके चेहरे पर हवाइया उडने लगी थी। हे भगवान क्या कर बैठा था वह! पल भर की आवेशपूण मूखता उसको जीवन भर के लिए ले बैठ सकती थी।

उसने हडबडाकर इधर उधर देखा। ईश्वर की कैसी महान कृपा थी कि डाल पर कही एक कौआ तक नही था।

वही न हा मेमना गोदी से उतरकर घास चरने लगा था, और एक मोटा सा घाघ दुबा कुटिल बकिम दष्टि से उसे ऐसे देख रहा था जसे सब कुछ समझ गया हो। मन्त्री को पहली बार लगा कि पशु बोल भले ही न पाए, व्यग्य से मुसकरा अवश्य सकते हैं।

उसने सहमी दृष्टि से दुर्गी को देखा। वह भेडो को हे हे कर ऐसे हाकती बटोरने लगी थी जैसे उसे देख ही नही पा रही हो। वह तेजी से उतार उतरता, फिसलता चला गया।

दूसरे दिन उसका भाषण सुनने दूर-दूर से ग्रामो की भीड समय के कुछ पूव ही आ जुटी थी। ग्राम पाठशाला का पूरा मैदान भर गया था और कुछ लोग तो उचक उचककर पेडा पर चढ रहे थे। भीड देखकर मन्त्री की छाती और तन गई। उस दिन उसको आकपक हसी वर्षा से धुली पहाड के मकान की अबरखी पथरीली छत सी ही और स्वच्छ निखर झकझक चमक रही थी। यह क्या सुदरी नारी के क्षणिक स्पश का जादू था?

जिधर देखो उधर ही गोरे गोरे चेहरे पके आडू से स्वस्थ गालो की लालिमा और निर्दोष चादनी। वह गव मे एक बार फिर तन गया। वाणी के घृतदीप की कई ओजस्वी बातिया दप दप कर एक साथ जल उठी।

"भाइयो!" वह कहने लगा, 'मुझे गव है कि मैंने इसी ग्राम पाठशाला म वणमाला से प्रथम परिचय प्राप्त किया है। तख्त की काली पाटी पर कमेट की स्याही स कान पकडकर 'अ आ' सिखाने वाले मेरे गुरु श्री ब्रह्मदत्त तिवाडी

इस भीड मे जहा कही बैठे हो, मेरा कृतज्ञ प्रणाम स्वीकार करें।"

"गुरु ता गुड चेला शक्कर !" भीड के किसी उद्धत छोकरे की तीखी आवाज़ और भीड की हसी को चतुर मन्त्री ने वही पर जूते से कुचल दिया— 'पर चेला शक्कर की ही भाति अब व्यथ हो गया है। भाइयो !" उसने हसकर कहा 'गाव का बादशाह अब भी गुड ही है। मैं पूछता हू कि बाज़ार किसका है ? चार रुपये किलो चीनी का या दो रुपये किलो गुड का ? किसे चाहती है जनता ?"

गुड गुड !" भीड से सम्मिलित कण्ठ गूजे। वाचाल मन्त्री की दलील ने भीड को जीत लिया। उसी विजय से झूमकर उसने फिर अपनी मनमें हक हसी का ब्रह्मास्त्र फेंका 'फिर ? देखा ना आपने, ग्राम की जनता हमेशा गुड ही को पूजगी !"

जनता तुमुल करतल ध्वनि से बीच ही म भाषण रोक अपना उल्लास व्यक्त कर रही थी कि मन्त्री की दृष्टि भीड मे भौजी के पास बैठी दुर्गी पर पड गई। उसकी गोदी मे उसका वही मुहलगा ममना बैठा था। आखें चार होत ही उसने बडी दुष्टता से मेमना तनिक उचकाकर मन्त्री को दिखा दिया। आज वह अनाखा शृगार कर आई थी कानो म गोल गोल बालियो के स्थान पर थ झुमके जिनके दु सह भार की गरिमा को दो चौडी शृगार पट्टियो म विभक्त कर सीधी माग क अगल बगल कर टिका दिया गया था। सिर का पल्ला भी शायद झुमको के वैभव के उचित प्रदशन के लिए जान बूझकर ही नीचे गिरा दिया गया था। चादी की ज़जीर का स्थान आज चादी की मोटी हसुली ने ल लिया था। नाज़ुक गदन म पडी हसुली के उसी अधचन्द्र मे मन्त्री अटककर अपनी समस्त राजनीतिक प्रगल्भता भूल गया। केवल हाथ जोडकर वह मुस कराता मच से उतर गया।

तालियो की गडगडाहट हाथो ही स गूज रही थी कि वह भीड चीरता भौजी के पास चला आया। झुककर उसने भौजी के चरण छुए, कई वर्षों के उपालभ सुने फिर उन्हे मना अपनी जीप मे बिठा घर तक पहुचा आया। भौजी को उसने बडे लाड से अपनी सीट पर बिठा लिया पर दुर्गी बिना कुछ कहे पिछली सीट पर बैठ गई। गोदी मे वही मेमना था।

मन्त्री कुछ सभलकर बैठ गया। पर वह शायद और निकट खिसक आई। मन्त्री को लगा कुमाऊ बण्ड के साथ नाचने वाले सिखे पढे दुबे की भाति यह सिखाया गया दुबा उसकी माला ही नही, शेरवानी भी चर जाएगा। उसने गले की माला उतारी और पीछे मुड, हसकर बोला, बुरुश के मीठे फूलो की माला है शायद तुम्हारे मेमने को बहुत पसद आ गई है।'

फिर ऐसे सधे अदाज से उसने माला फेंकी कि ठीक दुर्गी के गल म पड

गई। पल भर को दुर्गी का चेहरा लाल पड़ गया, पर फिर हंसकर सचमुच ही माला दुबे को खिलाने लगी।

"मुझे यही उतार दो दीदी।" उसने थोड़ी ही दूर जाकर कहा।

बहती नदी से लगी पनचक्की थी और उसीसे लगा था दुर्गी का घर। वह उतर गई तो भौजी ने उसे सब बतला दिया, जब उसने रिश्ता फेर दिया तो उसका विवाह उसने एक फौजी सूबेदार से कर दिया। कुमारी सुंदरी बहन को कब तक घर में बिठाए रखती? सूबेदार दुहेजू था पर तीन तीन भैंसें थी, कई थान भेड़ बकरियां थी और फिर पनचक्की भी उसीकी थी। पर छोकरी का भाग जो साथ लगा था, पाकिस्तान की लड़ाई से तो वह सकुशल लौट आया, लेकिन घर में चुभी एक नन्ही कील ने बाया पैर कटवा दिया, तब से लंगड़ा दिन रात नशे में डूबा पड़ा रहता है। दुर्गी ही घर और बाहर का काम संभालती है।

उस बार दो दिनो के लिए घर आया मन्त्री आठवें दिन लौटा, और फिर तो उसका हर महीने एक न एक चक्कर लगता रहता। लगता था, वह अपने ग्राम को डिजने लैण्ड ही बनाकर छोड़ेगा, देखते ही देखते कच्ची सड़क ने केंचुली उतार दी। फक फक करता बुलडोजर, निरीह पहाड़ी घाटियों का कलेजा रौंदने लगा। पीपे के पीपे कोलतार की मोटी तहों ने पीली धूप भरी सड़को पर शहरी व्याधि की स्याही फेर दी। डायनामाइट की दिल दहलाने वाली गर्जना से आए दिन त्रस्त गिरि कंदराएं गूंजने लगी। फिर नई बनी क्षीण कलेवर की सड़क पर अफसरो की जीप गाड़ियां आई, मन्त्री की झंडा लगी बनी ठनी वेश्या सी इठलाती चमकती गाड़ी और फिर आई देश विदेश के पर्यटकों से लदी लक्जरी बसें।

देखते ही देखते वह ग्राम हवाई द्वीप सा ही प्रसिद्ध हो उठा। जहां का शुद्ध पहाड़ी घृत अपनी पावन सुगंध की सुख्याति कभी दूर-दूर तक फैलाता आया था अब 'चूरे' की मिलावट से अपने सुनाम पर कालिख पोतने लगा। पास ही में मिलिटरी की एक बड़ी टुकड़ी भी आ गई थी। सीमा के प्रहरी शराब की हुड़क लगने पर धेले टके में ट्रांजिस्टर बेचने लगे और धीरे धीरे ग्राम में बंदरों ने भी अदरक का स्वाद लेना सीख लिया। जो सुरम्य घाटियां कभी परी चांचरियों के मधुर झोड़े गीतों से गूंजती थी अब [illegible] गानों से गूंजने लगी। एक लाड़ी खुल गई। जिस ग्राम में [illegible] ही मिठाई मानी जाती थी, वही एक व्यापारकुशल हलवाई [illegible] प्रसिद्ध बालसिंघोड़िया की ऐसी भव्य दुकान खोल दी कि [illegible] की भांति मिठाई का स्वाद लेना भूल, रंगीन [illegible] लने लगे।

अपनी नवीन अभिसारिका से मिलन के क्षणों की [illegible]

लैंड यार्ड के चतुर जासूसों को भी घिस्सा दे सकता था। दोनों कहां मिलते हैं कब मिलते हैं यह पूरे एक वर्ष तक कोई नहीं जान पाया। आधी आधी रात को कुमाऊं के बियाबान ग्राम की तलहटी में चौकीदार बन घूमते दुःसाहसी मन्त्री गुनगुने पानी की उस झील के किनारे बैठा अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा करता जहां से एक वर्ष पहले नौ फुटा बाघ नहा रहे पटवारी के जवान पुत्र को खींच ले गया था। कभी दोनों केवल प्रणय का जिरह बख्तर पहन उस अरण्य की हरीतिमा में हरे युगल सर्प से ही लिपटकर एकाकार हो जाते। पर लगड़ा चौकन्ना हो गया। उदार विधाता जब मनुष्य से उसका कोई अंग छीनता है तो स्वयं ही उस क्षतिग्रस्त अंग की क्षमता किसी दूसरे रूप में उसे लौटा भी देता है। अंधों की दृष्टि क्या उनके स्पर्श में नहीं समा जाती? अपनी इसी अमानवीय घ्राण शक्ति से लगड़े ने सब कुछ सूंघ लिया। पत्नी की साकल नित्य की भांति बन्द रहती थी पर वह जंगली बिल्ली सी, नीची खिड़की से सटे तिमिल वृक्ष की डालियां पकड़ जिस रस सागर में डुबकियां लेने जाती थी, उसकी सुगंध से उसके नथुने फड़कने लगे। वह नित्य की भांति दोपहर की रोटी पटकने आती तो वह आश्चर्य से सुंदरी पत्नी के अचानक अनजान बन गए चेहरे को एकटक देखता रहता। इतनी बड़ी आंखें तो इसकी नहीं थीं। और वास्कट? लगता था, एक लम्बी सांस लेते ही सारे बटन टूटकर रह जाएंगे।

'कहां जाती है तू दिन भर?" एक दिन उसने प्रभुत्वपूर्ण स्वर में पूछ लिया।

"बकरियों को घास चराने।" वह उत्तर देकर तीर सी निकल गई थी। लगड़े की आंखों में विवशता के आंसू छलक आए थे मार उसने सारी राटियां उठाकर खिड़की से बाहर फेंक दी थीं। दिन भर साली हरामजादी बकरियों के साथ खुद कैसी कैसी हरी घास चरती है वह चेहरा देखते ही समझ गया। फिर कई रातों से बैठकर अभूतपूर्व कौशल से बनाई गई बसाखी के सहारे लगड़ा एक रात को पुलिस के कुत्ते की भांति पानी को सूंघता, पेड़ों के मोटे तनों में छिप छिपकर उसके जल विहार को देख आया। दूसरे दिन पहुंचा तो पूरा ग्राम पंचों सहित उसके साथ था। वे संभल भी नहीं पाए थे कि भीड़ ने घेर लिया। क्रोध से उत्तेजित लगड़ा किनारे से ही भद्दी गालियों के पत्थर बरसाने लगा। मन्त्री सिर झुकाए और गहरे भंवर में उतर गया। जो भीड़ तालियों की गड़गड़ाहट से उसका स्वागत करती थी, वह उस अश्लील थूक के छींटों से छेदने लगी।

रंगे हाथों पकड़े गए चोर की भांति वह सिर झुकाए अदालत में खड़ा था। न उसका कोई गवाह था न वकील!

किन्तु दुर्गी गजब के दुःसाहसपूर्ण कौशल से तरती-तरती किनारे तक आ

गई, फिर उसन किसी तीरथ के खुले घाट पर नित्य नहाने की अभ्यस्त कुल वधुओं की भाति जल मे ही किनारे से खीची गई अपनी धोती का तबू तान बडे धैय से कपडे पहन लिए। न उसके चेहरे पर लज्जा की एक रेखा थी न अपदस्थ होने का सकोच। फिर बिना भीड की ओर देखे वह अपने प्रेमी को बीच भवर मे छोडकर लम्बी डगें भरती न जाने किस पगडडी की भूलभुलैया म ओझल हो गई। पर मत्री को क्रूर भीड ने 'रेडगाड' की क्रूरता से बाहर खीच लिया। जिन गलियो से कभी चुनाव जीतने पर उसे नदादेवी के डोले की भाति सजाकर शखधर और पहाडी तुरी दमामे के साथ जुलूस मे ले गए थे, वही से उस दिन वह बलि के बकरे सा ही निममता स घसीटा गया। रात भर थप्पड, घस और लगडे की बैसाखी की मार खाकर वह बेदम पडा था कि न जान कहा से उसकी मा को पता लग गया। उसकी मूठ, घात और दुनाली ब दूक सी छूटती बारूद की लपकती सी गालियो से पूरा गाव थर थर कापता था।

'हरामियो!" वह गरजी, "जब मेरा बेटा मत्री बना उसने पहले तुम्हारे गाव को ही बम्बई बनाया। कोई अपन लिए ता कोठिया खडी नही की। उसका यह इनाम दिया है तुमने? हे गोल्ला देवता, मैं भी देख लूगी और न्याय तुम भी देखना जिन जिनने इसे मारा है, उनकी लडकी का लडका, गाय की बछिया निपूती हो। उनकी राड बहुए सूनी माग और सूनी कलाइया लेकर चिता चढें!"

सहमकर अपढ भीड जैसे हवा म उड गई। बुढिया अधमरे पुत्र का घर तो ले गई पर बेटा रात ही को खिडकी से कूदकर निकल गया। राजगद्दी से विधिवत् नीचे खीचकर पटका जाता, इसके पूव वह स्वय ही गद्दी का मोह त्याग वनवासी बन गया। पूरे दो वप तक उसने असम के साधुओ की चिलम साधी फिर तीसरे वप जब गाजे चरस की दम भी असाध्य कलुष की व्यथा को मलिन नही कर सकी तो वह आसनसोल के कोयले की खान मे उतर गया। दिन डूब वह काली खान से काला चेहरा लेकर लौटता तो लगता पिछले कलुष की कालिमा स्वय दब गई है। अब यह चेहरा लेकर वह सगी मा के सम्मुख भी खडा होगा तो शायद वह भी भूत समझकर चीख पडेगी। यही भूल थी उसकी। पुत्र का चेहरा कितना ही काला क्यो न हो, मा क्या कभी पहचानने मे भूल कर सकती है?

कोयले की खान के जिस धमाके के लिए खान के मजदूरो की पत्निया अपना सुहाग नित्य हथेली म लिए फिरती हैं उसी धमाके न एक दिन देखते ही देखते सैकडो मागो का सिन्दूर लूट लिया।

मत्री ने इधर दाढी रख ली थी। अधजली दाढी झुलसा चेहरा और बुरी

तरह सहमा कलेजा लेकर वह स्ट्रेचर पर बाहर लाया गया और थोड़ी देर बाद डॉक्टरी जांच ने लाश बताकर कोने में पटकवा दिया। वह बोल नहीं सकता था पर अधजली पलकों के नीचे पुतलियां सचेत थीं। एक एक लाश को पहचान कर आत्मीय स्वजन विलाप से दिशाएं गुंजा रहे थे।

हाय, वह लाश समझकर कोने में पटक दिया गया था फिर भी उसके लिए कोई रोने वाला नहीं था! चुपचाप वह लाशों की बिरादरी से छिटक गया। उसी घिसटते मुर्दे को किसी दयालु ने अस्पताल में पटक दिया। दो महीने बाद जब वह निकला तब पट की वेदना भी हाथ पकड़कर साथ चल दी। फिर न जाने कितनी टिकटहीन यात्राएं कीं ट्रक ड्राइवरों से दया की भीख मांगी और आज अपने ग्राम के उदार वक्ष की छाया में पड़ा था।

मां की ग्राम की और सबसे बढ़कर दुर्गी की स्मृति उसे सहसा व्याकुल कर उठी। वह बड़ी चेष्टा से उठा और एक एक पेड़ पत्ते को पहचानता अपनी लाश घसीटने लगा।

अचानक एक परिचित खिलखिलाहट ने तानकर भाला फेंका जो उसके कलेजे के आर पार हो गया। सामने खड़ी थी एक जीप और उसका द्वार पकड़े दुर्गी खिलखिला रही थी। चालक की सीट पर बैठा एक लम्बा चौड़ा फौजी उसे हाथ पकड़ अपनी ओर खींचता पहाड़ी में कह रहा था—'देर मत कर, दुर्गी! देखती नहीं दिन डूब रहा है आ, बैठ जल्दी!"

तब ही वह भुनसी दाढ़ी लेकर सामने खड़ा हो गया। मानिनी के जिस उपालम्भपूर्ण कटाक्ष को मन्नी ने पहचाना वह उसके लिए नहीं उस फौजी अफसर के लिए था जो उसे गाड़ी में बैठने के लिए मना रहा था। "हाय राम, यह तो कोई मुंहझौंसा अधजला मुरदा ही चिता से भागकर आ गया है क्या?" वह लपककर चालक के पार्श्व में बैठ गई।

कुछ पलों को वह लंबा तगड़ा फौजी अफसर भी उस प्रेत के से कंकाल को देखकर सहम गया फिर उसने डपटकर पूछा "कौन है बे तू?"

"सरकार," वह गिड़गिड़ाने लगा 'बीमार हूं। अपनी गाड़ी में बिठाकर कुछ दूर पहुंचा दो।'

उत्तेजित सांस की धौंकनी से झुलसी दाढ़ी फटे चीथड़े पर्दे सी पल भर को हिली पर देखने वाली ने पपड़ी पड़े होठों पर उभरे अतीत के एक भी रसील स्मृति चिह्न को नहीं पहचाना।

"हट जा!" फौजी ने बड़ी उपेक्षा से कहा और उसके बैठते ही बड़ी तेजी से गाड़ी उतार पर छोड़ दी। तेज झटके से झुलसी दाढ़ी पल भर को सामने की सीट की मराल ग्रीवा से छू गई। उसके जी में आया, वह दोनों कांपते हाथों

की माला वैसे ही साधकर उस नाजुक गदन मे डाल दे, जसे तब डाली थी।

"कहा उतरेगा वे ?" फौजी ने फिर उसी उपेक्षा से पूछा।

पिछली सीट से कोई उत्तर नही आया।

"ले, उतर जा यहा, हम आगे नही जाएगे," एक अरण्य के मोड पर जीप रुकी पर वह नही उतरा।

"क्यो इसी गाडी मे मसान तक जाने का इरादा है क्या ?"

फौजी ने बडी बेरहमी से उसे खीचकर सडक पर खडा कर दिया। वह उन्मत्त फटी आखो से एकटक दुर्गी को ऐसे घूरने लगा कि उसने सहमकर फौजी की बाह पकडकर कहा, "जल्दी चलो, कही यह सचमुच ही मुसल्ले चूडीवाले का परेत न हो !" दो दिन पहले ही ग्राम के चूडीवाले को बाघ खीच ले गया था। जीप अगूठा दिखाकर चली गई। मत्री को लगा कोयले की खान म फिर धमाका हुआ है। अदृश्य लपटो मे वह झुलसकर गिर पडा।

जब होश आया तो सूय वन वनातर रगता धीमी गति से डूब रहा था। तीन घटे मे तीन फर्लांग की दूरी पार कर वह घर की देहरी पर खडा हुआ तो दोना पैर ठक ठक काप रहे थे। कापते हाथो से उसने साकल खटखटाई "कौन है इतनी रात गए ?" मा का ककश स्वर सुनते ही वह फिर लडखडाकर गिर गया। द्वार खुला। सहमकर मा पहले दो कदम पीछे हटी, फिर ककाल पर झुक गई।

जब से बेटा भागा था, वह सिरफिरी सी होकर रात भर पूरे ग्राम को गालिया देती रहती थी। पर जिसे पूण रूप से स्वस्थ प्रेमिका नही पहचान पाई थी, उसे उन्मादिनी मा ने पहचान लिया। वह पागला की भाति उसे चूमने लगी। उसी ममत स्वरूपी चुबना की बौछार मे उसने बडे यत्न से मुसकराकर मा का हाथ पकड होठो से लगाया और फिर बेहोशी मे डूब गया।

"अरे अभागा, क्या मुह ताक रहे हो ?' बुढिया चीख चीखकर अदृश्य बिरादरी को पौत रही थी— 'दखते नही, वह जा रहा है ! अरे हरामियो एक टुकडा सोना ले आओ भागकर, गगाजल और तुलसी दल सुनते नही क्या? हाय तुम्हारी कोखजली बहु बेटिया सूनी माग और सूनी कलाइया लकर चिता चढें ! इस गाव को महामारी चाटे ! बज्जर गिरे !

ग्रामवासी सोते रहे। उन्मादिनी वद्धा का तो यह नित्य का प्रलाप था। उधर वह स्वप्न देख रहा था। ग्राम पाठशाला की भीड के बीच वह गव मे भमता भाषण कर रहा है। मेमने को गोद म लिए दुर्गी को देखत ही भाषण कठ मे अटक क्यो गया ? सब हस रहे हैं। कोई भी ताली नही बजाता। एक भी माला गले मे नही पडती।

'मा !"

उसने आँखें खोल दीं। कपोलों पर आँसू की धारा बहने लगी—"क्या है मेरे राजा?" बुढ़िया ने पुत्र के पीले विधुर चेहरे को अपने हाथों में भर लिया।

"सुनते नहीं हो हरामियो?" बुढ़िया छाती पीट-पीटकर फिर चीखने लगी—"हाय, जब मन्त्री था तब कितनी मालाएँ लेकर आते थे उसके पीछे आज एक माला के लिए तरस रहा है मेरा बेटा!"

पर वह नहीं तरस रहा था। वह फिर सपना देखने लगा था। हँसती मुसकराती दुर्गी वैसी ही लाल गुलाब की माला हाथ में लिए उसे पहनाने चली आ रही थी, जैसी उसने कभी अपने मरने को मिला दी थी। मन्त्री ने दोनों काँपते हाथ जोड़े और गर्दन बढ़ा दी। हाथ शिथिल होकर छाती पर गिर पड़े पर माला पहनने को बढ़ी गर्दन उसी विजयी मुद्रा में खिंची रह गई।

'के'

"क्यो, आपकी माताजी चली गइ ?"

फिर वही बेतुका प्रश्न ! झुझलाकर शेखर ने हाथ की पुस्तक पटक दी और उठ खडा हुआ।

इधर उधर सघाती दृष्टि का घेरा डालने पर भी कोई नही दिखा। चाहता तो वह अभी ही दीवार फाद, उस रहस्यमयी प्रश्नकर्त्री को खीचकर बाहर ला सकता था, पर वह सत स्वभाव का मकान मालिक जानता था कि उसके मकान के दूसरे भाग मे, पाच प्रौढा, ससारत्यागी विधवाओ की राममण्डली रहती थी, स्त्रियो के बीच वह कैसे जाता ? पर निश्चय ही प्रश्न उन पाचो म एक के कठ का भी नहीं था। वे नित्य ब्राह्ममूहूर्त मे, अपनी 'राम राम' लिखी आइसक्रीम की सी गाडी को ठेलती, सगम की ओर निकल पडती और दिन डूबे लौटती। तब यह कौन थी ?

एक बार उन पाचो ने अपन गुरुदेव के आगमन के उपलक्ष्य मे विराट भडारे का आयोजन किया था और प्रसादी कुछ अधिक मात्रा मे खा जाने पर पाचो को एक साथ हैजा हो गया। उसकी पत्नी 'के' ही उन पाचो को एम्बुलेंस मे लादकर अस्पताल ले गई थी। कैसे मर्दाने चेहरे थे उनके और कैसा रूखा कठस्वर। यह मीठी हसी निश्चय ही उनके गलो की नही थी। चार दिन से जैसे ही वह 'के' को अस्पताल पहुचाकर लौटता और पढन बैठता फिर वही प्रश्न "माताजी चली गइ ?" एक दिन तो उसने उचककर दीवार से झाक ही दिया। राममडली के दालान मे एक लम्बी रस्सी तनी थी, उसपर कई रामनामी साडिया सूख रही थी। एक ओर एक चमचमाता पीतल का कनशा धरा था और एक मचिया पर कुछ मिर्चे सूख रही थी। आसपास कही कोई नही था। आज वह निश्चय ही 'के' से कहेगा। पत्नी कमला को वह इसी नाम से पुकारता। 'के' आती ही होगी— वह पुस्तक लेकर भीतर आ गया। उसके कमरे मे पहुचते ही उसकी 'के' तीव्र आधी के झोके की भाति आ गई। वह हमेशा ऐसे ही आती थी। द्वार भड भडाती कुर्सिया धकेलती वह हाथ का झोला झुलाती हाफ रही थी।

"ओ शेखर, बस दस मिनट निकालकर आई हू, भूख के मारे आतें कुलबुला रही हैं।" वह जोर से एक कुर्सी पर धम्म से बैठ गई, और उसन ऐमा प्रश्न पूछा जो प्राय पति अपनी पत्नी से पूछता है, "क्या-क्या है खाने मे आज ?"

"सब तुम्हारी पसन्द का है 'के', अरहर की दाल, भुर्ता, खड़े मसाले का सालन और रायता।"

"चावल ! चावल नही बनवाया, शेखर ?"

अपनी मासल बाहुओ का त्रिकोण बनाकर 'के' ने नन्ही मुहलगी बालिका की भाति अपने गप्पू से गाल फुला लिए।

"तुम डाक्टरनी होकर भी भूल जाती हो 'के', चावल तुम्हारे लिए जहर है इंसुलिन लिया या नही ?"

'के' ने कोई उत्तर नही दिया।

"क्यो रूठती हो डार्लिंग" शेखर ने अपनी प्रणयभीनी मुस्कराहट से उसे मनाने की चेष्टा की, "तुम्हारे लिए तो हमने भी चावल छोड़ दिया है।"

ऊपर के रोशनदान से सटी दो आखें आश्चर्य से फैलती जा रही थी।

दोनो थाल परसकर आ गए। शेखर अपनी नाजुक अगुलियो से चपाती के नन्हे कौर सालन मे ऐसे डुबोकर कुतर रहा था, जसे मुह में दात ही न हो, उधर 'के' अपनी भद्दी चौकोर पहाड़ी भिण्डी सी अगुलियो को चाटती चटखारती पूरी चपाती का एक ही निवाला बनाती ठूसती जा रही थी। हर कौर के साथ उनका अनगल प्रलाप चालू था।

"छेदी सालन खूब बनाता है पट्ठा, आज शाम को कोफ्ते बनवाना शेखर, पर देखते रहना, नही तो आधा घी साफ कर देगा। आखिर है तो जात का नाई। वैसे भी अच्छा खानसामा हमेशा चोर होता है। इतनी बात गाठ बाध लो, शेखर, ईमानदार नौकर कभी अच्छा खाना नही बना सकता। अगर आज शाम को कोई बच्चा जनने न आ धमकी तो पिक्चर चलेंगे डार्लिंग।" फटाफट चटाचट पद्रह चपातिया भकोस तीन विलम्बित लय की डकारें ले 'के' उठ खड़ी हुई।

शेखर भी नपकिन से अपनी पतली मूछें पोंछ पत्नी को विदा देने उठ गया।

"आने से पहले फोन कर देना, तुम्हें चाय तैयार मिलेगी 'के'," वह मुसकराया।

"तुम्हारे रहते मुझ कौन-सी चीज तैयार नहीं मिलती, शेखर" सुरसा की भाति मुह खोले वह अपने तरुण पति को विदा चुम्बन का ग्रास बनाने लपकी, तो रोशनदान वाले ने मुह मे रूमाल ठूस लिया। हाय, बेचारा अपनी दादी की हमउम्र पत्नी कहा से ढूढ लाया। ठीक ही कह रही थी मौसी, चाद का टुकड़ा है हमारा पड़ौसी और एसा शरीफ कि चार साल से साथ रहते हैं, पर मजाल है जो कभी आख उठाकर देख ले।

मन ही मन किशोरी को हसी आ गई थी, देखता भी क्या बेचारा ! देखने लायक चीज हो और किसी पुरुष की आंखें न उठें तो मैं टांगा तले छिरक जाऊं। मौसी और उनकी चार बराहदली सहेलिया भी भला कोई देखने की चीज थी।

दार थे। अपनी कुत्सित पुत्री के लिए वर नहीं जुटा पाए, तो डाक्टरनी बना दिया। ईश्वर भी तो सब ओर से आखें नहीं मूदता। रूप मे वचिता किया पर बुद्धि का कोठा ठसाठस भर दिया। कमला डाक्टरनी बनकर निकली तो अगुलियों स अमृत सजीवनी टपकने लगी। नाडी धरते ही रोग का निदान कर देती वह विलक्षणा डॉक्टरनी। कैसा भी कठिन प्रसव क्यो न हो वह पल भर मे सुलझा देती। पिता की मत्यु के पश्चात वह मा के भारी गहने पिता के शेयर और अटर बटर समेट अपनी नई नौकरी का भार सभालने शहर चली आई। अब वह प्रौढ हो चली थी। पेशे मे सदा से घिसी मजी अगुलिया और मज गई थी, पर विराट बगले के एकाकी प्रवास ने उसके मर्दाने चेहरे को और भी रूखा और कठोर बना दिया था बल्कि कई लोगो का तो कहना था कि उसकी विलक्षण प्रतिभा का राज, उसके कठोर स्वभाव और रूखे कण्ठस्वर मे छिपा है। पीडा से कराहती जच्चा को वह एक ऐसी धमकी लगाती कि गर्भस्थ शिशु सहमकर भूमि पर आ जाता। ठीक जैसे विदेशो मे अथाह समुद्र की जलराशि के बीच जहाज म यात्रा कर रही इक्की दुक्की जच्चा को बन्दूक दाग सहमाकर अनाडी खलासी प्रसव करा देते थे और नवजात शिशु का नाम धरा जाता था 'सन आफ ए गन', ऐसे ही यह रोबदार डॉक्टरनी अब तक न जाने कितने 'सन्स ऑफ गन्स' को अपने कण्ठस्वर की बन्दूक दागकर जन्मा चुकी थी।

डॉक्टरनी के मित्रो की सख्या प्राय नहीं के बराबर थी एक तो वह पेशे मे चतुरा नारी जानती थी कि डॉक्टरी पेशे मे अधिक मित्र न बनाना ही बुद्धिमानी है। बिना फीस के मित्रो को देखो फिर उनके मित्रो को देखो। वह बिना फीस के किसी रोगिणी की नब्ज भी नहीं छूती थी। मगल को वह घर पर ही मरीज देखती थी इससे डोली, पालकी तागो इक्को की एक लम्बी कतार दूर तक ऐसे खिची रहती जैसे फाफामऊ का बाजार लगा हो। एक दिन वह ऐसी ही लम्बी कतार को बारी बारी से देख रही थी कि क्यू के अन्त मे खडे एक सिर मुडे स उदास पीले चेहरे के युवक को देखकर चौंक गई। चेहरा कुछ कुछ पहचाना लग रहा था। सदा वह क्यू के क्रम मे खडे व्यक्तियो को बिना क्यू तोडे उसी क्रम से बुलाया करती थी पर उस पीडित सुन्दर चेहरे की अनकही व्यथा न उस पिघला दिया।

"जाओ उस लडके से पूछकर आओ क्या वह मरीजा को अपने साथ लाया है? बडा घबडाया सा लग रहा है" उसने अपनी कम्पाउण्डर से कहा। घाघ कम्पउण्डरनी चौंकी आज तक तो कोई कितना ही घबडाया क्यो न हो, मालकिन कभी नहीं पसीजी।

"उसका कोई बीमार नहीं है सरकार कहता है आप ही से काम है!"

डॉक्टरनी की उत्सुकता बढ गई उससे मिलने वाले तो आज तक अपने

मरीज़ो के ही प्रतिनिधि बनकर आते थे, इस छबीले जवान को भला उससे कौन सा काम हो सकता था ?

डॉक्टरनी ने उसे अपने निजी कमरे मे बुलवा भेजा। वास्तव मे उस नव युवक के चेहरे की कमनीय काति दशनीय थी। उसका रग, पाण्डुरोग की सी पीली काति लिए था। बेचारा! कमज़ोर लिवर का शिकार होगा, डाक्टरनी ने मन ही मन उसकी जाच कर ली थी।

"कहिए, मैं आपकी क्या मदद कर सकती हू ?" डाक्टरनी ने मुस्कराकर पूछा।

युवक बेहद घबराया लग रहा था, उसने बिना कुछ कहे ही एक लिफाफा बढा दिया। मुशी जी की लिखावट देखकर डॉक्टरनी चौकी। उसके पिता के मुशी के हाथो से लिखा गया अनुनयपूण पत्र था, वे एक लम्बे अर्से से बीमार हैं, बचने की उम्मीद कम है, शेखर, उनका इकलौता पुत्र, इलाहाबाद मे ही किसी आत्मीय के यहा कठिन परिस्थितियो मे पढ रहा है, अब उसी मेघावी पुत्र को वे उसके पास बडी आशा से भेज रहे हैं। उनकी मृत्यु आसन्न है, क्या शेखर को उसके चरणो मे वे डाल सकते है ? अपना छोटा भाई ही समझ लेना बेटी," उन्होने लिखा था।

'तुम मुशी जी के बेटे हो ?" डाक्टरनी ने चश्मा उतारकर मेज़ पर धर दिया।

"जी," युवक ने आखें झुका ली।

"क्या पढ रहे हो ?"

"जी, इसी वष फिजिक्स मे एम० एस सी० का फाइनल दे रहा हू।"

"कहा रहते हो ?"

"अतरसुइया म पिताजी के ताऊ के दामाद हैं, उन्हीके पास रहता हू।"

'ओह, बडी दूर की रिश्तेदारी ढूढी, आजकल तो अपना ही दामाद नही पूछता, फिर ताऊ का दामाद भला क्या पूछेगा! यहा क्यो नही चले आते ? क्यो यहा आना पसन्द करोगे ?"

'जी," युवक हडबडाकर उठ बैठा, "मैं इस इरादे से नही आया था, असल मे बात यह है कि पिताजी नहीं रहे," अचानक यह लम्बा-तडगा युवक नादान बच्चे की भाति सुबकने लगा। बीच-बीच मे वह पैण्ट की जेब मे हाथ डाल, रूमाल निकालने की चेष्टा कर रहा था जिसे शायद वह घर पर ही भूल आया था।

डॉक्टरनी न अपना रूमाल उसकी ओर बढा दिया वह कृतज्ञता से गद्गद हो गया, आपको बहुत मानते थे पिताजी, कहते थे बडी शाहदिल हैं, तुमपर कभी विपत्ति आए तो नि सकोच चले जाना।'

"तुम यही क्यो नही चले आते," उस सुन्दर नवयुवक के सम्मुख अपनी शाह-दिली का शीघ्र परिचय देने डॉक्टरनी व्याकुल हो उठी।

'इतना बडा बगला है," उसने बडे गर्व से दोनो हाथ फैलाकर, अपने बगले का अहाता दिखाया। ' मैं तो दिन भर अस्पताल म रहती हू, तुम निचला एक पूरा सेट ले सकते हो, आराम से पढना, दो-तीन नौकर है, तुम्हे कोई तकलीफ नही होगी।' स्वच्छ बगल की छटा, मखमली दूब का आमन्त्रण और फिर परमस्नेही प्रौढा गृहस्वामिनी के मातृतुल्य आग्रह न, क्षण-भर के पाहुने को सदा क लिए बाध दिया।

दूसरे ही दिन वह एक रग उडा फूलदार बक्स, ढेर सारे मैले कपडो और पुस्तको की सम्मिलित पोटली लटकाए ससकोच डाक्टरनी के बरामदे मे खडा हो गया। दुर्भाग्य से डाक्टरनी अस्पताल गई थी, चौकीदार ने उसे चीरकर धर दिया, ' जिसे देखो वही साला पोटली लटकाए बगल पर खडा है। यह कोई सदर अस्पताल है क्या ? जाओ मरीज लकर वही जाओ।" इतन म ही डाक्टरनी आ गई, उसने एक डाट लगाकर चौकीदार को भगा दिया और बडे आदर यत्न से अभ्यागत को भीतर ल गई।

' दखा छेदी," उसने अपने सबसे चुस्त नौकर का बुलाकर कहा, "ये हमारे मुशी जी के बेटे है, अब यही रहगे, इन्हे किसी तरह का तकलीफ न हो, समझे, हमारे कनसल्टिंग रूम के बगल के दोनो कमरा म इनका सामान लगवा दो।"

और इस प्रकार, शेखर दिन-प्रतिदिन कृतज्ञता के प्राणलेवा दलदल की गहराई मे डूबने लगा। कितना ही काम क्यो न हो, डाक्टरनी उसे साथ बिठाकर खिलाती। सुबह चार अण्डे, दलिया, मक्खन, डबल रोटी, गिलास भरा हिसार की भैस का दूध। साथ म मल्टी विटेमिन की सतरगी गोलिया। पिता क ताऊ के दामद के यहा, अजवाइन डले नमकीन पराठे खाने का अभ्यस्त शेखर का निरीह पेट विद्रोह कर बैठा। उसे अपच हो गया, पर डाक्टरनी क झोल मे अपच की भी तो राम बाण गोलिया रहती थी। वह दो ऐसी गोलिया भी खिला देती। धीरे धीरे अडो की चर्बी गालो पर सुर्खी बनकर फैलन लगी, उदास पुतलिया की उदासी धुल गई। रहा सही कसर शहर क नामी दर्जी न पूरी कर दी। सुरुचि स छाटे और सिलाए गए कपडो म शेखर का व्यक्तित्व उभर आया। उसे लकर, कभी-कभार डाक्टरनी घूमन निकलती तो लोग कहते, ' डाक्टरनी न एक बडे ही सजीले नौजवान को गाद लिया है अब अपनी सारी सम्पत्ति भी उसीके नाम लिख रही है।" यहा तक कि आसपास के समृद्ध गृहो से तिलक क नीलामी डके भी बजन लगे। पर तब ही डॉक्टरनी गजब कर बठो। वैस तो यह ससार का नियम ही सा बन गया है कि रक्षक एक न एक दिन भक्षक बन ही जाता है, पर जिस तर्जी से, बिना किसी पूर्व निर्धारित योजना के ही, डाक्टरनी न शेखर को वर्षो स दबाई अपनी क्षुधा का ग्रास बना लिया, उसके लिए समाज प्रस्तुत नही था ! जैसे कसाई खस्सी बकरे को यत्न स खिला पिला, एक दिन मोटी गर्दन पर छुरी फेर ही देता

है, ऐसे ही शेखर की गर्दन भी मोटी होते ही नप गई।

पूरे शहर में तहलका मच गया, कोई कहता, "प्रौढ़ डाक्टरनी की मति मारी गई है। जवान छोकरे की लुटिया ही डुबो दी!" कोई शेखर को ही दोष देता, "क्या कोई बच्चा था, जो जलेबी खिलाकर फुसला लिया!" पर शहर में एक भी घर ऐसा नहीं था, जो डॉक्टरनी के एहसानों से न दबा हो, इसीसे जिस तेजी से कटु आलोचना का गगन चुम्बी ज्वार उठा था, उसी तेजी से उतर भी गया।

प्रौढ़ डॉक्टरनी अब बड़ल्ले से अपने नौजवान पति को लिए घूमने लगी। अब वह अपने सफेद बालों के बीच सीधी मांग निकाल आधा पाव सिन्दूर बिखेरने लगी, पैरों में बिछुए पहन लिए, यहां तक कि उसने नाक छिदवाकर हीरे की एक लौंग भी डाल ली। बड़ी कठिनता से प्राप्त सौभाग्य दस्यु को वह पतिव्रता के कानून की एक एक हथकड़ी से बन्दी बनाकर रखना चाह रही थी। छोकरे-से पति के साथ वह सिर ढाक-ढककर परिचित मित्रों के अभिवादन का सलज्ज प्रत्युत्तर ही नहीं देती, अपने पति का निलज्ज परिचय भी दे डालती, "इनसे मिलिए, मेरे पति शेखर कुमार।"

मिलने वालों की समझ में नहीं आता कि उस अभागे को बधाई दें या सहानुभूति के शब्दों से उसका अभिषेक करें! डॉक्टरनी ने विवाह के पांचवें दिन ही हनीमून की जोर-शोर से तैयारी कर दी। जिन साड़ियों के शोख रंगों को उसने अपने यौवन काल में लाठी लेकर खदेड़ दिया था, वे उसकी प्रौढ़ावस्था में और भी शोखी से मचल उठे। अब वह लाल, पीली, नीली नई चटकीली भड़कीली साड़ियां ले आई। झुर्री पड़े गालों पर अस्वाभाविक सुर्खी का प्रलेप थोप, मां के भारी भारी मगर कानों में लटका, वह देखने वालों की दृष्टि में हास्यास्पद, किन्तु अपनी दृष्टि में स्वयं अपूर्व सुन्दरी दीखने लगी। लम्बे हनीमून के दौरान, नैनीताल, कश्मीर, शिमला, मसूरी आदि नापने के सुदीर्घ प्रवास काल में यत्न से संवारा गया बंगला किसको सौंपा जाए, यह मुख्य समस्या थी। इसी समय छप्पर फाड़कर राममण्डली टपक पड़ी। 'के' अपने विवाहोल्लास की वारुणी के मद में चूर थी, पहले कोई किराये पर बंगला उठाने का प्रसंग उठाता, तो वह चांटा कस देती, पर अब उसने उनका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। सामान्य-से किराये पर ही आधा बंगला उठ गया, पांच देखने में साक्षात् डाकिनी शाकिनी सी विधवाओं को प्रतिवेशिनी बनाने में भला आपत्ति ही क्या हो सकती थी, कोई सुन्दरी षोडशी होती, तो शायद वह दो घड़ी सोचती भी। तब से राममण्डली वहीं जमी थी। यही नहीं सबसे बड़ी हेड रामनी से तो 'के' का बहनापा भी था, वही पांचों में सबसे अधिक रसिक स्वभाव की थी। 'के' हनीमून से लौटी तो उसको रसपूर्ण यात्रा का विवरण सुनने में हेड रामनी को अपनी बद्री केदार की यात्रा से अधिक आनन्द आता। पर इधर जब से किशोरी आई, वह जानबूझकर ही

के पास नही गई थी । किशोरी उसकी मृत छोटी बहन की पुत्री थी
सखो 'के'पशत्रु ने अचानक किसी हथगोले की ही भांति उसे हेड रामनी पर फेंक
और भाग।'के' का ईर्ष्यालु स्वभाव उससे किशोरी के आगमन की बीसियो कैफियतें
दिया था उसे बोर्डिंग म डाल देगी, तब 'के' से कहेगी । किशोरी को तो वह बाहर
मांगेगा ।ि नही देती थी । पर किशोरी क्या बिना झांके मान जाती ? चौथे दिन
झांकने भैया सगम को गइ और 'के' को अस्पताल पहुंचा, शेखर पुस्तक ले
पाचा मो बैठा ही था कि उसन फिर पूछा, "क्यो, माताजी चली गइ ?"
आगन मे र जैसे पहल ही तत्पर बैठा था । फिर कैसी ही त्ा्वी क्यो न हो,
शेखर के निरन्तर बोझ स, नीम की डाल कुछ झुक आई थी । दो-तीन
चार दिनो नीली साडी के भ्रामक रग, पत्तो के बीच किशोरी की छाया को
दिन घा्ना बचा लेत थे, आज की लाल जयपुरी चूनर हरी घास मे चमक उठी,
धूमिल बदन्वेवी प्रश्न बाण का स्वर भी कुछ काप गया । शेखर ने लपककर
फिर डाड, ऐस हिलाई जैसे पक फल गिरा रहा हो !
डाल पक्से टपके आम सी ही किशोरी टपक पडी । क्षण भर को भी पकडने
टप कता तो हाथ-पैर चूरमार हो जाते ।
वाला चू र ने किसी 'रिफ्लेक्स ऐक्शन' की ही प्रेरणा से उसे सभाल लिया ।
शेखय अधेड थुलथुली काया को थामने की अभ्यस्त पुष्ट आजानु भुजाए
निराइ । सहमकर, उसने छटपटाती किशोरी को जमीन पर छोड दिया ।
थरथरा र अचानक घबडा गया ।
शेखमा कीजिएगा," उसके ललाट पर पसीना झलक उठा "मुझे पता नहीं
'क्षआप उस डाल पर हैं ।"
था कि ।वह मुखरा उवशी बडी धृष्टता से मुस्कराई, "ओह, आपने क्या सोचा
पर।स डाल का हिलाने पर आपकी दादी नीचे गिरेगी ?" शेखर का चेहरा
था कि ऐसे लाल हो उठा । "वह तो आपका भाग्य अच्छा था, नही तो नीम की
अपमान ताने पर फल थोडे ही ना गिरता । उफ कुहनी छिल गई !" उसने जान-
डाल हिलपनी सुडौल कुहनी सहलाई पर उसका प्रदशन व्यथ गया । प्रौढ़ा पत्नी
बूझकर सहवास ने शेखर को समय से पूव ही बुजुग बना दिया था ।
के लम्बे ब आप जाइए मुझे अस्पताल जाना है,' उसने आखें नीची किए बडे
"र मे कहा ।
नम्र स्व।ह अपनी 'के' को लाने" वह फिर हसी, "अच्छा बतलाइए तो आज
'आके' ने कुल जमा दस ही चपातिया क्यो खाइ ? और दिन तो पन्द्रह
आपकी ? बेचारी, मैं रात को भी रोशनदान से देखती रहूगी, ठीक से
खाती थीा । आखिर उसी खूटे के बल तो आप नाचते हैं !"
खिलाइएर के गौर मुखमण्डल पर एक बार फिर कणचुम्बी ललाई खिच गई ।
शेख

"आपने तो डाल हिलाकर पके फल-सा गिरा दिया, अब चढ़ूं कैसे ?" उसने बडे भोलेपन से पूछा और पहली बार दोनो की आखें मिली।

शेखर के सर्वांग को सौंदय शिखा के उस दहकते अगारे ने दाग दिया।

"चलिए, सामने का गेट खुला है, मैं आपको पहुचा दूगा।"

"वाह जी वाह, क्या जरूरी है कि आपका गेट खुला है, तो हमारा भी खुला होगा। हमारी मौसी हमे ताले मे बन्द करके जाती हु, कहती है अतिरूप से ही सीता-हरण हुआ था। मैं तो कहूगी, आपकी 'के' की भी यह सरासर नादानी है। आपको ताले म ब द न रखना उसकी मूखता है, लीजिए, सहारा दें तो मैं चट से डाल पकड लू।'

शेखर ने उस उद्दण्ड बालिका का आदेश गुमसुम होकर सुना, फिर चुपचाप भीतर से एक स्टूल लाकर धर दिया।

'धन्यवाद,' उसने साडी को कुछ ऊचा किया, सुडौल अरुण एडिया स्टूल पर उचकी और वह कूदकर उडनछू हो गई।

"माताजी से प्रणाम कहिएगा, और फिर एक बचकानी खिलखिलाहट छन-छनाकर कहीं खो गई।

शेखर कुछ देर तक बुत सा खडा ही था कि घडघडाती 'के' आ गई।

"यह क्या शेखर! सो गए थे क्या ? कई बार फोन किया घण्टी खुन-खुनाती रही, किसीने उठाया ही नही। मुझे अस्पताल की ऐम्बुलेंस मे आना पडा।"

'के' बुरी तरह हाफ रही थी।

'सारी के, मैं यहा बैठा पढता ही रहा।"

'कुछ है खाने को ? आतें कुलबुला रही हैं। अभी अभी एक सडी बच्चेदानी आपरेशन कर निकाल आइ हू। जा मिचला रहा है।"

शेखर की अगुलियो म अभी भी किशोरी की यौवन प्रस्फुटित देह-वल्लरी का स्पश ताजा बसा था, उसने ऐसे अनाडी खूनी की भाति अगुलियो को पैंट की जेब मे छिपा लिया, जैसे खूखार थानेदार को देखकर वह ताज़े रक्त का एक-एक छीटा मिटा देना चाहता है।

नाश्ता लगते ही 'के' भूखी शेरनी सी टूट पडी। कचाकच भकाभक पकौ-डिया, मेवे और केक हडपकर वह एक पका सेव लेकर सोफ पर लद गई। दानो पैर नीचे लटकाकर बोली, बी ए ब्रिक डार्लिंग, जूता खोल दो।"

शेखर की आखें बरबस ऊपर को उठ गई। रोशनदान पर किसीकी स्पष्ट छाया उभरी। बडी विवशता से वह पत्नी के जूत खोलने झुका, नित्य के अभ्यास का एक ही झटके मे नहीं तोडा जा सकता।

'कल मुझे गोरखपुर जाना है शेखर', वह बोली, "एक तगडी रईस मुर्गी

फसी है। रायजादा साहब की बहू की डिलीवरी के लिए बुलावा आया है। लडका हो गया इस बार तो अशर्फिया ही बरसेंगी। पिछली बार टयूबल प्रेगनेंसी थी। मुझे जाना भी चाहिए। पिछले सात साल से बेचारी गोरखपुरी लालमिर्चों का लाजवाब अचार खिला रही है। वसे तुम्हे भी साथ लाने का बहुत आग्रह किया है पर उनकी छोटी लडकी इज डैम गुड लुकिंग, आई काण्ट टेक द रिस्क।" वह प्राय ही अपन युवा पति से ऐसी मनचली रसिकता कर बैठती थी।

"मुझे पढना भी है" शेखर ने गम्भीर स्वर मे कहा।

"हा, हा, इस बार तो तुम्हे थीसिस सबमिट करनी ही है, सोचती हू कल तडके ही कार लेकर चल दू।"

दूसरे दिन सुबह चार बजे ही 'के' निकल गई, उधर राममडली भी किसी पड पर लटके दा सौ वष के बाबाजी के दशन करने चली गई थी।

आश्वस्त होकर शेखर ने बत्ती बुझाई और सो गया। सुबह होने म घटा भर था। अचानक खाने के कमरे मे खटपट शब्द सुन, वह चौंका। हो न हो यह 'के' का मुह लगा पर्शियन बिल्ला किंग' होगा। उसके हिस्से का नाश्ता मेज पर ही धरा था। सब प्लेट-प्याल तोड-ताडकर रख देगा बदजात।

वह झुझलाकर उठा और खाने के कमरे की आर लपका।

"आइए," मुस्कराती किशोरी का कण्ठ केक के एक बडे-से टुकडे स अवरुद्ध था, फिर भी उसने ऐसी अभ्यथना की, जैस वही गह स्वामिनी हो।

"बडी भूख लगी थी," वह बडे ही प्यारे ढीठ स्वर म बोली, "सुबह आपकी 'के' का नाश्ता देखती रही ढेर सा सामान बचा था, अपने को रोक नही सकी। इधर मौसी की मण्डली की नवरात्रि चल रही है, जी मे आता है, कोटू के आटे और उबले आलू का गोली मार दू। वाह, खूब बढिया खाना खाते है आप लोग।"

अपनी लाल तीखी जिह्वा के छोर से उसने अपने रसीले अधर चाट, चटखारा लिया और अचार की लाल मिच को मठरी पर मसलकर मुख मे धर लिया।

"इसी अचार को लेने गई है न आपकी के' गोरखपुर ? भई वाह मान गए बादशाही अचार को।"

शेखर उस बेहया लडकी के दु हसाहस को दखकर दग था। थोडी ही देर मे छेनी आता होगा।

पता नही यह सिरफिरी क्या कर बैठे। कही किसी पागलखाने से भागकर आ गई कोई पगली-वगली तो नही है यह ?

आप हैं कौन ?" मन की उधेडबुन झुझलाहट भर प्रश्न के रूप म निकल पडी, तो शेखर को अपने रूखेपन पर कुछ ग्लानि भी हुई।

आपसे मतलब ?" किशोरी एक-एक ढकी प्लेट को खोलकर दख रही

थी, सब कुछ चाट चुकी थी वह, एक तश्तरी म बडी-सी टिकिया मक्खन की धरी थी, उसन लपककर वही मुख म धर ली ।

"देखिए," शेखर गिडगिडाया, पता नही आप कौन है, पर इधर सब नौकर आते होगे, आपका मरे साथ अकली दख लग तो अच्छो बात नही होगी ।"

क्या अच्छी बात नही होगी भला ? आप बुरा मानें या भला जब तक आपकी 'के' नही आती हम जरूर आएगे, अब चलू, ध यवाद ।'

और वह उठत ही किसा चतुर दस्यु क या-सी मज पर धरी के की फिल्मी पत्रिकाए बगल म झपट्टा मार दबा ल गई, वाह, खूब माल हाथ लगा है आज, दिन भर मजे म कटेगा । मौसी क यहा ता सिवाय धम ग्र था के कुछ पढने ही का नही जुटता ।' कहती कहती वह फुर्ती स आगन पारकर अपनी सतु टहना का पकड अपनी सीमा म कूद गई ।

शखर न चोरो ता दखा थी, पर एसी सीनाजोरी दखन का यह पहला अवसर था । उस अपरिचिता क उत्पात स बचन का एक हा उपाय था । दिन भर वह अपने मित्र रमण क साथ बाडिग म बिता लगा, कह देगा घर पर पढाई ठीक नही होती । एक दो दिन न हो मेस' का ही खाना सही, फिर तो 'क' आ ही जाएगा । रात का देर स लौटेगा और कमरा भीतर से ब द कर सो जाएगा, फिर क्या छत स टपकगी छोकरी ?

अपनी योजना स परम स तुष्ट हो वह बग म कपडे ठूस ही रहा था कि एक हल्के धमाक स चौका । जिस छलन को सहस्र योजनाए बनाई जा रही थी, वह छलनामयी स्वय मुस्कराती सशरीर उपस्थित हो गई ।

ओह मुझस डरकर भाग जा रह है क्या ' लपककर उस दु साहसनी न बैग छीन लिया । दखू क्या क्या लिए जा रह ह, अपना के' का फाटो वाटो भी धरा है या नही ?' वह एक एक चाज नीच फकन लगी ।

' छि छि , आपकी 'के मुटल्ली, दखन ही दखने की है हथिनी ! यह काई स्वेटर है भला ? हमारा बुना स्वटर स्वटर दोखए, तो बस दखत हो रह जाएग । हमार जोजा जा कहत है, बेबी, तुम सा गला ता काई बना हो नहा सकता । '

' दखिए, इन सब बाता का सुनन का मुझ शोक नही है, ' शेखर अब कुछ कुछ मुखर हो उठा था ।

अचानक ठक् स एक धीमी पदचाप से, दानो न एक साथ चौककर द्वार की ओर देखा । एक मोटा-सा बिल्ला मूछ चाटता निकल गया, ता विद्यारी जार स हस पडी, वाह ! पतित पतत्रे विचालत पत्र , गीतगावि दम् पढा है आपन ? आप भला क्या पढेंगे । असली मम क साहब ह । हम ता भई सस्कृत क शास्त्री जी की बिटिया है ।"

' दखिए आप शास्त्री की बिटिया हो या महामहोपाध्याय की !'

"अरे बाप रे," दोनों पैरों की पालथी मार, बाहों को घेरे में बांध किशोरी कुर्सी पर ही झूला सा झूलने लगी, 'पेट में दांत भी हैं साहब के ।"

'आप जाएंगी या नहीं," शेखर अब बौखला गया, 'पता नहीं नौकर कब आ टपके और 'के' से क्या का क्या कह दें ।"

'छि, कैसा नीच मन है आपका ।" वह अब बड़े व्यंग्य से मुस्कराकर उठ गई, 'आपने क्या सोचा, आपसे प्रेम करने आई थी मैं ? सोचा था मौसी का दल पांच बजे लौटेगा तब तक दो घड़ी आपसे बनियाकर जी बहला आऊंगी—खैर, फिर आऊंगी—अब आपका छेदी आए तो ज़रा अपनी मोटी बुद्धि का चोला उतार खूंटी पर टांग दीजिएगा । छुट्टी दे दीजिएगा उसे, कहिएगा, सिनेमा देख आए—समझे ?" उसने अपनी भुवनमोहिनी हंसी का बाण तानकर छोड़ दिया ।

अचूक निशाने से बिंधा शेखर का हृदय कपोत धरा पर फड़फड़ा गया ।

शेखर तो क्या संसार का संयमी से संयमी पुरुष भी होता, तो वह भी उस दिन छेदी को सदा के लिए छुट्टी कर देता । चंचल, अनजान सुन्दरी किशोरी ने उसका हाथ थामते ही, उस भीरु, कापुरुष की एक एक शिरा में अनोखा दुःसाहस भर दिया । वह अब आग की लपेटों में कूद सकता था, आंधी और तूफान से लड़ सकता था । कुछ ही अमूल्य क्षणों ने 'के' का अस्तित्व सदा के लिए मिटा दिया था । उसके दायें बायें, दामिनी सी दमकती बित्ते भर की छोकरी उसे अंगुलियों पर नचा रही थी । दोनों का अभूतपूर्व दुःसाहस जंगली हिरन सा कुलांचे भरने लगा था । छेदी की पदचाप सुनते ही किशोरी जंगली खरगोश की तेज़ी से चौकन्नी हो, वारड्रोब के पीछे दुबक जाती । मौसी के दल को उसने स्वयं बड़े प्रपंच से, मिर्जापुर की विन्ध्यवासिनी के दर्शन को भेज दिया था । उधर 'के' का ट्रंककाल आया था कि रायज़ादा की बहू को झूठे दर्द उठे थे, पर कभी भी सच्चे दर्द उठ सकते थे, इसीसे उसे आठ दस दिन रुकना पड़ेगा ।

सुनते ही किशोरी, शेखर के गले में हाथ डालकर झूल पड़ी थी, "हाय ईश्वर करे रायज़ादा का नाती, मां के गर्भ से दाढ़ी मूछें उगाकर जन्मे !" पर रायज़ादा के नाती को युगल प्रेमियों की इस प्रणय किलोल में सहयोग देने का धैर्य नहीं रहा और अभागा उसी रात को जन्म ले बैठा । पति से इतना लम्बा बिछोह 'के' को असह्य हो उठा था । आज तक वह इतने लम्बे अरसे के लिए शेखर से कभी बिलग नहीं हुई थी । दूसरे ही दिन तगड़ी फीस, रेशमी साड़ी, शेखर के सूट का कपड़ा आदि बांध-बूंध वह चल पड़ी । वह पति को बिना तार किए ही छका देने की योजना बना चुकी थी ।

उधर प्रेमीद्वय 'के' की अनुपस्थिति का महोत्सव मनाने में आकण्ठ डूबे थे । अब छेदी को भी मुट्ठियां गर्म कर अपने साथ मिला लिया गया था । अभी भी कमरे की परिधि पारकर, दिन में कहीं जाने का साहस दोनों नहीं सजो पाए थे,

पर फिर भी एक रात को दोनो सिनेमा का सेकण्ड शो देखने निकल पड़े। नियति मह छिपाकर हस रही थी।

उसी मनहूस रात को 'के' रात की गाडी से ठीक ग्यारह बजे रिक्शा लेकर आ धमकी। गोल कमरे की बत्ती जल रही थी। निश्चय ही उसका अध्ययनरत पति द्वार की ओर पीठ किए पुस्तकों मे डूबा होगा। धीमे से जाकर आंखें मद लेगी वह। ऐसे ही खिलवाड तो उसे पसन्द थे। पर बेचारी 'के'! आखें मदती सिसकी! वहा तो शेखर की कुर्सी पर ठाठ से बैठा छेदी बीडी फूक रहा था।

"बेहया कमीना कही का, यहा कैसे आ गया?" छेदी अचानक साक्षात शव वाहना चामुण्डा का तमतमाया चेहरा देखकर, थर थर कापने लगा।

"सरकार मेरा कुछ कसूर नही है," 'के' के वह पैर पकडकर लोट गया 'पहले तो दीवार फादकर आती रही, जब से सन्तनिया गई हैं खुले खज़ाने आपके माल पर डाका डाल रही है हमारा खून खौलता रहता है, पर क्या करें नौकर आदमी हैं—साहब का हुक्म कैसे टालें अन्नदाता?"

धूर्त नापित विषधर अब कुण्डली खोल, पूरा फन फैला चुका था।

'के' हक्की बक्की रह गई। पर अपनी अनभिज्ञता इस धूर्त के सम्मुख बडे छलबल से ही छिपानी होगी।

"साहब कहा है?" उसने स्वाभाविक स्वर मे पूछा।

"दूनो जनी सलीमा गए हैं, सरकार घण्टा-भर मे लौटते ही होगे।"

कुचाली छेदी की आखें मिया-बीबी की सम्भावित दर्शनीय कुश्ती देखने की ललक से काच की सतरगी गोलिया-सी चमक उठी। उसका क्या? अब भगतेंगे दोनो—उसे मिली रकम तो अब कोई छीन नही सकता—उसने मन ही मन कहा। 'के' चौकन्नी हो गई। गरज तरज आसू चीख पुकार से बात कुछ बनेगी नही। क्या पता शेखर उसे छोड-छाड इसी दीवार फादने वाली के पीछे चल पडे। पर यह थी कौन? बिना छेदी को मिलाए बात बनेगी नही।

छेदी की मुटिठया एक बार फिर गम हुई। सब कुछ सुनकर 'के' सन्न रह गई। क्षण भर को बुढिया का पीला पड गया चेहरा देख छेदी को तरस आ गया।

"मैं स्टेशन जा रही हू, छेदी" 'के' ने रूमाल से नाक पोछकर कहा "रात-भर वही रहूगी। शेखर से कहना मेरा गोरखपुर मे ट्रककाल आया था कि मैं कल सुबह पहुच रही हू। अगर तुमने उसे मेरे आज यहा आने के बारे मे कुछ कहा, तो फिर तुम मुझे जानते हो।"

छेदी क्या उसे नही जानता था। फूल सी सुकुमारी कितनी ही किशोरियो को लूट-पाट, उनके पाप की गठरियो का कचरा धोते क्या नही देख चुका है इस हत्यारिन को।

दूसरे दिन सुबह शेखर कार लेकर स्टेशन गया। 'के' ने नित्य की भाति कार

में बैठते ही अपना माथा उसके वषभ-स्कन्ध पर टिका दिया, वह कुछ तन-सा गया तो 'के' को लगा वह वहीं पर फट फटकर रो पड़ेगी। पर वह जानती थी कि अब उसे उस्तरे की धार पर चलना है। "मेरे गए मे तुम्हें कुछ तकलीफ तो नही हुई शेखर ?" उसका स्वर चार तार की चाशनी में डूबा था।

"नहीं !"

पति के सक्षिप्त रूखे स्वर के चांटे ने भी उसे हताश नहीं किया।

"रायजादा के नाते हुआ है तुम्हारे लिए बहुत बढ़िया सूट का कपडा भेजा है।"

"अच्छा !" व्यग्य से तिरछे खिंचे अधर पर शेखर की कुशलता से तराशी गई पतली मूछें भी तिरछी हो गईं।

प्रेमतरंगाकुला 'के' ने बड़े प्रयास से अपने को रोका अगणित कन्दर्प छवि को म्लान कर रही उसके पति की छवि उसके गाल से बित्ते-भर की दूरी पर थी। और दिन की बात होती तो वह उसे उस भीड़-भरे चौराहे ही में झपककर चूम लेती। पर मन मारकर उसने अपने को रोक लिया। घर पहुचते ही छेदी स्वागत को खड़ा था।

"क्यो छेदी ठीक हो ? साहब को खूब आराम दिया ना ?" अपने सफल अभिनय पर 'के' को स्वय ही गर्व हुआ।

"हा सरकार अपनी जान तो खब आराम दिए हैं" कपटी काकदृष्टि से वह अपने साहब की ओर देखकर मुस्कराया।

पर साहब गुमसुम था।

दोनो चाय लेने एक साथ बैठे। कठोर मानसिक आघात भी 'के' की भूख नहीं हर पाया था। उसने कचर-कचर पकौड़िया खाईं आधी डबल रोटी साफ की भुने बादाम दो पोच अण्डे भकोस सेब लेकर सोफे पर लद गई। नित्य के अभ्यास से उसने अपनी मैयर के मोटे तूम्बे सी टागें नीचे लटका दीं "बी ए ब्रिक डार्लिंग जूता खोल दो हमारा।"

पर शेखर अब तक उल्टे पड़े अवश बीटल की भांति अचानक सीधा होकर भन्नाने लगा था "हमसे नहीं खुलेगा छेदी को बुला लो।"

रोशनदान की आंखो की जादुई छडी, उसे उठा बिठा रही थी यह सेब की ओट से चतुरा 'के' ने भी देख लिया।

'सॉरी शेखर" उसका गला भर आया और वह स्वय जूता खोलने लगी।

रात को शेखर भूखे शेर की भांति चक्कर लगा रहा था। किशोरी की एक ही दिन की गैरहाजिरी ने उसे अध विक्षिप्त सा कर दिया था।

"शेखर डियर" अचानक 'के' को अपने पास खड़ी देख वह झल्ला गया।

'क्या है ?" उसने डपटकर पूछा।

"आज बडी सन्तनी आई थी, शेखर, विन्ध्यवासिनी का प्रसाद देने, साथ मे उसकी एक प्यारी-सी भतीजी भी थी।"

उस प्यारी के नामोल्लेख मात्र से ही शेखर की आखें चमकने लगी है, यह भी 'के' ने देख लिया।

"मैंने उन सबको कल शाम चाय पर बुलाया है। पाचो तो केवल फलाहार लेंगी पर उस प्यारी बच्ची से मैंने पूछा उसे क्या पसन्द है—बोली, कुल्फी। सच ए चाइल्ड! तुम तो कुल्फी छूते नही, खैर, तुम्हारे लिए कुछ और बनवा लेंगे।"

शेखर का हृदय गदगद हो गया। चलो आज नही तो कल ही सही। किशोरी की एक झलक तो मिलेगी।

दूसरे दिन की सन्ध्या के आयोजन मे कही भी कोई त्रुटि नही थी। फलाहारी सन्तनिया कभी कन्धारी अनार पर दात मारती, कभी रामगढ के सेबो पर। कभी गुच्छे के अगूर चटकर 'हरि ओम्', 'हरि ओम' कर अगूरी डकारो की मशीनगन-सा चला देती।

किशोरी से शेखर का परिचय स्वय 'के' ने करवाया, "शेखर, इससे मिलो, ससार की सवश्रेष्ठ सुन्दरी।"

ससार की सवश्रेष्ठ सुन्दरी से शेखर का कितना प्रगाढ परिचय था, यह खूसट भला क्या जानेगी? शेखर मन ही मन मुस्कराया।

किशोरी कोने मे खडी कुल्फी पर कुल्फी दागे जा रही थी।

"इतना मत खा केशी, बीमार पड जाएगी," हेड सन्तनी अब तक अपने रामढोल से पेट मे रामगढी सेबो का एक छोटा मोटा ओचड बना चुकी थी।

"टोकती क्यो हो बीमार पड भी गई तो मैं तो हू," अपनी सुमेरु पवत सी छातियो को ठोकती 'के' आगे बढ आई।

"जानती हू, जानती हू भैन," किशोर की मौसी ने अपनी सोने की दन्तखुदी से दात खादकर कहा, "तुम्हीन तो हम पाचो को प्राणदान दिया था।"

खा पीकर पाचा विदा हुईं, तो शेखर मन मरा सा कमरे मे बैठा रहा। बार बार वह तृषित चातक सा रोशनदान को ही देख रहा था—पर अटारी सूनी थी और वह जनता था कि आज सूनी ही रहगी।

बडी देर तक बैठा पढता रहा। 'क' दो तीन बार बुलाने भी आई, पर निराश होकर लौट गइ।

एक अजीब बचैनी से शेखर का दम सा घुटने लगा।

वह उठ ही रहा था कि किसीने द्वार भडभडाया 'डॉक्टरनी भैन, डॉक्टरनी भैन," भूतनी सी बाल फैलाए बडी, मझली और छोटी सन्तनी खडी थी।

'अरे बेटा तनिक उठा दे उसे, मेरी किशोरी ऐंठी जा रही है, एक दो दस्त आए हैं और दो उल्टिया—हाय, इसके ताऊ को मैं क्या मुह दिखाऊगी!"

हेड सन्तनी का रोना कलपना सुन, ड्रेसिंगगाउन डाल, चप्पल फटफटाती 'के' बाहर आ गई सब सुनते ही आला लटका वह तेजी से सीढिया चढ गई। सचमुच ही किशोरी के सुदर चेहरे पर स्याही फुक गई थी।

"किशोरी आखें खोल बिट्टी" सन्तनी ने उसकी ठुड्डी पकडकर हिलाई। किशोरी ने बडी चेष्टा से आखें खोली और द्वार पर खडे अपने नवीन प्रेमी के चेहरे पर नग-सी गडा दी।

"शेखर" वह बुदबुदाई।

शेखर निर्भय होकर बढ आया, पलग की पाटी पर बैठ उसने किशोरी की हिमशीतल हथेली थामकर गाल से सटा ली।

पाचो सन्तनियो की आखें आश्चर्य से बाहर निकल आईं। 'के' जेल की कठोर जेलर सी सिरहाने खडी थी।

किशोरी के प्राण जैसे शेखर की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। देखते देखते पुतलिया उलट गईं।

पाचो सन्तनिया अपना ज्ञान, योग और यम नचिकेता सवाद भूल, सामान्य मानवीयो की भाति छातियो पर दुहत्थड चलाती पछाडें खाने लगी "हाय मेरी बच्ची, तूने अभी सुख ही क्या देखा, तू कहा गई री।"

"देखिए" 'के' न बडी सन्तनी का क धा पकडकर हिलाया, "होश म आओ बहन, वैसे तो इसे कौलरा था, पर सुबह होने से पहले ही अर्थी उठा दीजिए, उस हरामजादी पुलिस का कुछ ठीक नही बेकार मे परेशान करेगी।"

ससार त्यागी स तनिया पुलिस से बेहद घबडाती थी।

सोने की सी काया को अर्थी मे कस कसाकर अस्पताल के कर्मचारी राम के नाम की महिमा से आकाश गुजाते चल दिए। पीछे पीछे सिर झुकाए शेखर को भी जाते 'के' ने देख लिया। वह अपने कमरे मे अस्पताल के लिए तैयार होने लगी। एक आध मौत क्या डाक्टरनी को अस्पताल जाने से रोक लेती? वहा तो ऐसी आकस्मिक मृत्यु नित्य का दाल भात थी।

एकाएक किसी घिनौने केंचुए सा रेंगता छेदी द्वार पकडकर खडा हो गया।

"हमारी बख्शीश सरकार—जान पर खेलकर कुल्फी बनाई—कही कोई पकड लेता, तो आपको कोई डर नही था, हमी फासी पर लटकते।"

"हा हा मिलेगी, शोर मत कर—शेखर आता होगा।" 'के' झुककर फीता बाध रही थी कि उसे लगा उसकी गर्दन पर किसीकी कडी नजर का चाबुक पड रहा है। चौंककर देखा, तो शेखर की लाल अगारे-सी आखें दहक रही थी।

"अरे शेखर तुम श्मशान नही गए क्या?" उसने पूछा।

"नही," वह बीभत्स ढग से हसा "तुम्हे वहा पहुचाने आया हू।"

सुनते ही छेदी खिडकी कूदकर हवा हो गया।

चीलगाडी

काश, मैं अपने विदेशी प्रतिनिधिदल के साथ असम के उस गहन वन मे आयोजित, नागा सहभोज मे न गई होती ! सुपारी के पेड और पानों के झुरमुट के बीच एक विराट अग्निस्तूप की लाल लाल लपटें आकाश को चूम रही थीं। विचित्र परिधान मे अगा को मोडता मरोडता एक नागा तरुण, हमारे स्वागत म अपनी रणसिंही को आकाश की ओर उठा उठाकर फूकने लगा था, "तू तू तू तू !"

उस रणसिंही की मीठी स्वर लहरी ने मुझे फिर बेचैन कर दिया।

एक बार मेरे जीवन मे ऐसी ही रणसिंही और बजी थी कानो को फाडकर झूलते, भैंस के सींगो के काले कुण्डल झुलाता अवधूत जागी समरनाथ बाजी, अपन गाजे से आरक्त नयन आकाश को उठा, टेढी रणसिंही को बाकेय मुद्रा मे साध उच्चमुखी फूक दे उठा था, 'तू तू तू तू !" आज उसी विस्मत फूक की स्वर लहरी ने कुमायू के गगनागन को पारकर, इस अपरिचित असम के आकाश को घेर लिया है। जिन स्मतियो को मैंने अमानवीय दु साहस से कुचल दिया था, वे आज फिर जीवन्त हा उठी हैं।

लेडी ब्रैण्डन को असम के मूगा रेशम का पूरा थान भेंट किया गया है। वे उसे बार बार गालो से लगा, उसकी स्निग्धता म आकण्ठ डूबी जा रही हैं। विदेशी राजदूत की पत्नी के भारत दशन यात्रादल म मुझे सम्मिलित कर, विशिष्ट सम्मान दिया गया है—यह मैं जानती हू। इस समय मुझे क्या क्या कहना चाहिए, वह भी मुझे ज्ञात है। असम के इस मूगा रेशम की विशिष्टता, रणसिंही के स्वर सगीत की व्याख्या, नागा मुखिया के गले मे झलती मुण्ड माला की मौलिकता—इन नाना विषयो पर मैं घटो धारा प्रवाह बोल सकती हू किंतु रणसिंही बीच बीच मे बजती जा रही है। तरुण वादक का नगा शरीर आग की लपटो मे ताम्रवर्णी लग रहा है वह बार बार मुझे ही देख रहा है जैसे मुझे चुनौती दे रहा हो 'देखो न भूले बिसरे चेहरे बिसरना क्या इतना आसान है?"

बडी अम्मा देवूलला, बाबूजी कुन्दन और गैरिक वसनधारी स्वामी आत्मान द सब जस हाथ बाधे मण्डलाकार इस अग्निस्तूप की परिक्रमा करने लगे हैं। अल्मोडा के गिरजे के मीठे घटे, देवदार के घनद्रुमा स टकरात बार बार गूज रहे हैं। मिशन स्कूल को जाती, हसती खिलखिलाती, सीटी बजाती ईसाई लडकी

की लम्बी कतार पूरी सडक घेर रही है और समरनाथ बाजी की उसी करुण स्वर-लहरी के साथ नेपाली कुलिया के कन्धे पर हुमकती मेरी डोली, मायके की देहरी, कल्पनालोक मे एक बार फिर लाघ रही है। घूघट की यवनिका के बीच बार-बार नथ के लटकन का दृष्टि व्याघात पड रहा था, फिर भी मुझे चाची के गोरे गोल हाथ पर बधा पीले लाल सूत का ककण स्पष्ट दीख रहा था। बाबूजी की तीखी नाक पर रोली पर चिपकाए गए अक्षत बिखर गए थे उन्हे कन्धे के लाल दुशाले से पोछते, वे दाडिम के पेड के नीचे खडे एकटक मेरी डोली को देख रहे थे। शायद पहली बार उन्ह अपनी मातृहीना पुत्री पर दया आ रही थी। उन्हीके पास खडा कुन्दन, अपने अल्लम खल्लम कोट मे बेहद दुबला लग रहा था। उदास, भयत्रस्त आखो से, वह तेजी से ओझल होती डाडी को देखकर, एकाएक रो पडा था। मातहीन भाई के उस रुदन की सिसकिया आज फिर जैसे किसी टेपरिकाड पर बजने लगी हैं।

मेरा कन्यादान चाची ने ही किया था, विमाता अपन सत्रह दिन के शिशु को लेकर मायके चली गई थी। सहसा किस बात को लेकर उनकी बाबूजी से ठन गई, कोई भी नही जान पाया। वैसे उन्हे मेरी अन्त्येष्टिक्रिया देखकर सन्तोष ही होता। सप्तपदी के समय, मेरे पति को खासी का ऐसा विकट दौरा पड गया था कि क्षण भर को बाबूजी का चेहरा भी पीला पड गया। 'कल ही तो पी० पी० लगी है," वर पक्ष की फुसफुसाहट मेरे कानो मे गम शीशा उडेल गई थी। पी० पी० किस जानलेवा राजरोग म लगता है, यह मैं भी जानती थी। पी० पी० लगने की पीडा से कराहती मृत्युपथगामिनी रुग्णा मा के चेहरे को क्या मैं भूल सकती थी।

विमाता के षडयन्त्र ने ही मुझे दुर्भाग्य का द्वार खटकाने भेज दिया था फिर वे स्वय क्यो कन्नी काट गई? ससार मे ऐसे भी बहुत से व्यक्ति मिलते है, जो बकरे की बलि नही देख सकत, किन्तु उसका मास मज्जा चिचोडकर खाने मे उन्ह बडा आनन्द आता है। बाबूजी ने शायद पहले उस रिश्ते मे कुछ आपत्ति की थी पर मेरे श्वसुर मेरी विमाता के मामा लगते थे, इसीसे बाबूजी की दाल गल नही पाई।

मेरे श्वसुर के वैभव का अन्त नही था। यह ठीक था कि मेरी दो विधवा जिठानिया और एक विधवा ननद मेरी ससुराल की स्थायी सदस्याए थी, किन्तु उस बीस कमरो के विराट महल म तीन क्या तीस आश्रिताए भी रहती तो भी मेरा उनसे टकराने का कोई प्रश्न ही नही उठता था। सास नही थी मेरे पति को विधवा ताई ने ही उन्हे पाला था। मेरे श्वसुर की अनुपस्थिति म वे ही घर की देखभाल करती थी। दिन डूबे मेरी बारात नैनीताल पहुची थी। भारी

जामदानी, सहगे ग्रौर दुहरे पिछौड़े के भार से दुहरी होती मैं, जिसके हाथ का सहारा लेकर उतरी उसका गौर वर्ण देखकर क्षण भर को सशय मे पड गई। मैंने तो सुना था मेरे पति काले भुजग हैं, श्वसुर कुल के उसी ग्रपयशी काले रग को मिटाने के लिए तो मेरा ग्राह्वान हुआ था।

"ग्राज तक कुल ग्रौर समृद्धि देखकर बहुए लाया जोशीजी!" मेरे श्वसुर ने बाबूजी से कहा था 'इसीमे घर का नैन-नक्श चौपट हो गया। ग्रब के सोचा, भाड म जाए समद्धि चान्दी सी बहू लाकर कुन्दन-से नाती-नतनिया जुटाऊगा, चाहे बहू गाव की ही क्या न हो पर हो लाखो म एक!" सचमुच ही ग्रपनी दोनो जिठानिया ग्रौर ननदों को देखकर मैं भय से स्तब्ध रह गई थी। क्या चेहरा था बडी जिठानी का बालो से भरा सकुचित ललाट ग्रन्दर को धसी क्रूर ग्राखें बाहर को निकले विकराल गजदन्त ग्रौर एकदम मुडा सिर। दूसरी जिठानी भी उन्हीकी टक्कर की थी, हरिद्वार से वे भी बडी के साथ हाल ही मे सिर मुडाकर लौटी थी। वैधव्य से दोनो का चेहरा ग्रौर भी भयानक लगने लगा था। बडी जिठानी के कोई भी सन्तान नही थी। दूसरी के एक राक्षसाकृति ग्रपग पुत्र था उसे वे चौबीस घटे गोदी मे टागे रहती पन्द्रह वष के उस विचित्र जीव की ग्राखें किसी भूखे वन्य पशु की सी थी। कभी कभी वह ग्राख की पुतलियो को लटटू सा घुमाता मेरी ग्रोर देखकर ही ही कर हस देता ग्रौर ग्रपने हण्डे सा भीम मस्तक हिलाने लगता। मैं भय से काप उठती। बडी ननद कलकत्ता के एक समद्ध कुमाउनी परिवार मे ब्याही थी बगाल के सुदीर्घ प्रवास ने उनके चेहरे की रही सही कान्ति भी छीन ली थी। ग्रपने दो काले बच्चो की ग्रौर भी काली ग्राया के साथ वे एक दिन मुझे घरकर बैठी ढोलक पर मेरे द्विराग मन के गाने से मेरे मायके की दुर्गति गाथा गाती मेरी दोनो जिठानियो को पुलकित कर रही थी, "बन्नी की दादी को ले गया मुसल्ला, मुहल्ले म शोर मचा रे !" मेरी दोनो जिठानिया, मेरी दादी के ही मुसल्ले के साथ भाग जाने से सन्तुष्ट नही थी वे तालिया बजाती मेरी ग्रम्मा चाची, नानी सबको बारी बारी मुसल्लो के साथ भगाती हसी की लहर से कमरा गुजा रही थी कि सहसा वही सुपुरुष, हमारे बीच ग्राकर खडा हो गया, जिसने मुझे बस से उतारा था।

"मैं ग्रापका देवर हू भाभीजी। देखता हू सुन्दरी भाभी को ग्रशोक वाटिका की काली राक्षसिया ने घेर ही लिया। इनम भी एक त्रिजटा है, भाभी, उन्ही के चरण गहो, समझी?"

ग्रासपास के काले श्रीहीन चेहरो के बीच बडी ग्रम्मा के हसमुख चेहरे को मैंने पहली बार ठीक से देखा। उन उदार ग्राखो मे न जाने क्या था कि मेरा माथा स्वय नत हो गया।

"आग लगे, बज्जर पडे इन देबूलला पर!" मेरी गजद तो जिठानी, बनावटी क्रोध के तेवर चढाकर बोली, 'जहा हम औरतो को बैठी देखा, वहीं घुस आए, हसी ठिठोली की भी तो एक उम्र होती है लला, अब हमारी तुम्हारी क्या वह उम्र रह गई है ? पर चलो घर मे पहली बार सुदरी बहू आई है, तुम्हारे भी सात खून माफ करती हू।"

देबूलला बडी अम्मा के भतीजे थे, हाल ही मे उनकी बदली भी नैनीताल को हो गई थी, इसीसे अपनी बुआ के साथ रहने लगे थ। विवाह का भण्डार उन्ही के पास था और मेरी दोना जिठानिया वक्त बेवक्त उन्हीसे उलभी रहती थी।

"ए हा, लला, चाबी दे दो, नारियल निकालने है।" बडी जिठानी, देबूलला के चौडे क धे पकडकर हिला देती।

"नही, बाबा," देबूलला पान की पीक मुख मे गुलगुलात, ठिठालो की रसपूण पिचकारी छोड देते। राम भजो, तुम विधवा भाभियो की नीयत बिगडते क्या देर लगती है! गई नारियल निकालन और चट से चार लडडू मुह मे धर लिए।"

"हाय राम, मैं मर गई। सुनती है, मझली, आज इनके लिए एकादशी के दिन हम अपना धरम भ्रष्ट करेंगी, अनाज के लडड़ चुराकर!"

बलखाती दोनो जिठानिया, देबूलला पर अकारण ही ढुलक पडतो। उन दोनो का मुग्धा किशोरियो का सा सस्ता अभिनय देखकर मुझे कभी बडी झुझलाहट होती, पर कहती किससे ? पति अपने कमर मे बद रहत, मेरे श्वसुर प्राय ही अपन ठेको के प्रसग म तिब्बत और ताक्लाकोट की ओर उतर जाते। मुझे बडी अम्मा के कमरे मे बैठकर, हलाहल छलकते ताल को देखना बडा अच्छा लगता। उस हवादार कमरे मे, सवदा एक अदभुत शात वातावरण छाया रहता। कमरे की दीवारें असख्य देवी देवताओ की तसवीरो से भरी रहती, उन्ही के बीच टगी रहती बडे बाबू की एक आदमकद तसवीर। बद गले के कोट, गोल टोपी और घनी मूछो वाले उस रोबदार व्यक्ति का, एक एक नक्श मेरे पति स मिलता था। उनके जीवन काल म घर की बहुए ठोक पीटकर बदसूरत ही छाटी जाती थी।

"सुदरी बहुओ पर कम विश्वास था उन्हे, वे आज होत तो तुम इस घर मे न आ पाती", मझली जिठानी ने मुझस हस हसकर कहा था। पर फिर वडी अम्मा इस घर मे कैसे आ गइ ? क्या सुदरी वडी अम्मा पर भी बडे बाबू न विश्वास नहीं किया ? बडी अम्मा का चिकना चेहरा, किसी विदेशी नन के निष्पाप चेहरे की ही भाति सुदर था। मैंने उन्हें कभी झल्लाते नही देखा। उनके पास बैठना मुझे बडा अच्छा लगता था, पर बैठ ही कहा पाती थी। पल भर मे ही चिडचिडे पति चीखने लगते "कहा गई हो ? अगूर का रस अब क्या खाक पिऊगा ? तुम

क्या कर रही थीं बडी अम्मा के विधवाश्रम म ? क्या तुम्हे भी उसकी सदस्या बनने का शौक चर्राया है ?" और मैं उस निर्दयी व्यक्ति के निमम व्यग्य से तिलमिला जाती। इधर नियमित रूप से पी० पी० लगने से उनकी तोद निकल आई थी। कभी कभी ठडी हवा लगने के भय से वे काना पर मोटा मफलर लपेट लेते तो मुझे लगता बडी अम्मा के कमरे म टग तैलचित्र से, बडे बाबू उतर आए है। कभी कभी उनक लाड का अन्त नही रहता। कहते, "चटपट तयार हो जाओ, सिनेमा देखने चलेंगे।" लाल वेलोर की जरीदार वर्दी म, मेरे श्वसुर के पहाडी कुली, मेरी डाडी को हवा म उडा ले जात, पीछे पीछे अपन चेस्टनट घोडे मे, गरम कपडो के जिरहबख्तर म ऐंठे चले आत मेरे पति। सिनमा घर मे हमारे बाक्स के सम्मुख मेरे पति के देशी विदशी मित्रो की भीड लग जाती। कितनी ही रानी महारानियो से मुझे हाथ मिलाना पडता, सब मेर पति का मुझ सी रूपवती पत्नी पाने के लिए बधाइया देते, तो मैं लज्जा से गड जाती। अग्रेजी सिनेमा की उत्तेजना से कभी कभी मेर पति को वही खासी का विकट दौरा पड जाता और हम लौटना पडता। उनकी इस गिरती हालत का समाचार सुनकर, बाबूजी भी भागते चले आए थे। उ हृ दखकर, क्षण भर का बाबूजी के गौर मुखमण्डल पर विषाद की झुरिया उभर आई थी। पश्चात्ताप से उनका चेहरा कुछ क्षणो को विकृत हो उठा था, पर दूसरे हो क्षण उन्होने अपने को सयत कर मुझे आश्वासन दिया था, सब मगल होगा छोटी, मैं जात ही महाकाल के म दिर म दामाद के लिए मत्युजय का अमृतजाप करूगा।' कि तु बाबूजी का अमतजाप भी उनकी मत्यु को नही जीत पाया।

कहते हैं कि यक्ष्मा के रोगी को, अ त समय तक ज्ञान बना रहता है। मेरे पति की मृत्यु भी बोलत बोलते हुई थी, 'मेरी घडी कहा है ?" उन्होने चीखकर पूछा था और उसी चीख के साथ उनकी आख की पुतलिया अचल हो गई थी। मैं भय से सहमी उनके सिरहाने खडी ही रह गई थी। बडी अम्मा की दबी सिसकिया, दोना जिठानियो का सटीक विलाप, सब सुनकर भी मैं नही रो पाई। उस कठोर, निमम व्यक्ति के साथ बिताए गए सात महीने की अवधि मे मुझे एक भी ऐसा प्रणय प्रसग स्मरण नही आ रहा था, जिसका आधार लकर मैं बिलख सकती।

घर के अ य पुरुषो का आना असम्भव था, उ हृ खबर भेजने म ही तीन दिन लग जात। फिर अलकन दा की जिस रस्सी क पुल से होकर डाक का हरकारा आता था, वह भी कुछ दिनो से ब द था। देबूलला ही कर्त्ता बने। कभी श्मशानघाट की यात्रा के लिए चाय चीनी जुटा रहे थे, कभी अर्थी मे बधी मेरे पति की लम्बी देह की निरथक परिक्रमा कर रह थे। मैं सोच रही थी, कितना स्वार्थी है मानव, श्मशानघाट की नीरस यात्रा के लिए भी चाय चीनी जुटाना वह नहीं भूलता। घर मे अनोखी निस्तब्धता छा गई थी। स्त्रियो के विलाप के स्वर अवरोह म

उतर चुके थे, देहरी पर प्रदीप जलाकर रख दिया गया था, जिससे दूसरे लोक को महाप्रस्थान कर गई आत्मा, माग पर प्रकाश पाती रहे, किन्तु इस लोक म जिस अभागिनी के वक्ष का ज्योति पुज सदा के लिए बुझ गया था, उसके लिए प्रकाश की हिन्दू शास्त्र मे कोई व्यवस्था नही थी। दसवें दिन, पीपल के वृक्ष के नीचे मृत पति को अजलि देते, मैंने अपने हाथो को देखा, तो स्वय काप गई थी। बिना चूडियो के मेरे नगे हाथ मूसल से लग रहे थे। रग बिरगे सूत की धज्जियो से सवरा पीपल अपने घने पत्तो की छाव से आधी पगडण्डी घेर था। पडित जी की श्लोकावृत्ति के साथ पति की प्रेत मुक्ति के लिए दोनो हाथो मे जल भर-कर मुझे दक्षिण दिशा को छाडने का आदेश मिला, तो मैं भय से सहमी हाथ का पानी भी छोडना भूल गई थी।

बडी अम्मा प्राय मेरे पास ही बैठी रहती। तेरहवी के पश्चात, उ ही ने मेरा पक्ष लेकर पुत्र शोक से जर्जरित मेरे श्वसुर के सम्मुख मेरी शिक्षा को पुनर्जीवित करन का प्रस्ताव रखा था। मुझे छोटी ननद के साथ कालेज जाने की अनुमति मिली तो मेरी दोनो जिठानिया कुढकर रह गई थी। पर लग गए हैं छोटी के, अब देखो कब उडती है," मझली दिज्यू ने हसकर कहा था। कैसी विचित्र भविष्यवणी थी।

धीरे धीरे मेरे पति की बरसी की तिथि भी आ गई। और मेरे दोनो जिठा निया, देबूलला को अपने कटाक्षो से रससिक्त कर फिर भण्डारघर मे चक्कर काटने लगी। मुझे उन दोनो को देखकर उबकाई आने लगती। एक ओर तो उनके व्रत और कोरे अनुष्ठानो का अन्त नही रहता, दूसरी ओर रगीले देवर से उनका मर्यादाहीन आचरण देखकर मैं दग रह जाती। दिन मे जिस चादर को बिछाकर, भक्ति भाव से सिर हिलाती और कृपालदत्त पडित जी से शिवपुराण सुनती, रात को उसी चादर की चादनी बिछाकर देबूलला और उनके एक रसिक प्रवर मित्र को लेकर, ताश की ब्रिजलीला जमाती। दोनो जिठानिया अग्रेजी के नाम पर ए, बी भी नही पहचानती थी, किन्तु आक्शन और काण्ट्रैक्ट ब्रिज के अखाडे मे कुशल से कुशल खिलाडी को भी वे बुरी भाति पछाड देती थीं।

देबूलला बार बार मुझे भी आमन्त्रित करते रहते, पर मैं बडी अम्मा के पास बठी रहती। कभी कभी देबूलला के आग्रह से बडी दिज्यू बुरी तरह झुझला उठती, "नही आनी, तो बकार क्यो खीच रहे हो—ताश खेलना क्या दिमागी लोगो का काम है? छोटी ठहरी कालेज की लडकी, वह क्यो खेलेगी! वह तो पढ लिखकर कलक्टर बनेगी है न, छोटी?"

बडी दिज्यू न जाने आज तुम कहा हो! यदि पास होती, तो दिखा देती, कलक्टर ही नही कमिश्नर ने भी मेरे पाव धोए हैं। ऐसे ही एक विदेशी अतिथिदल को घुमाने कश्मीर ले गई थी। वहा की स्वर्गीय झील म हमारी हाउसबोट 'स्वीट

किस' नीले पीले फूलों से सजाई गई थी। ऐंठी मरोड़ी मूछों का स्वामी, एक अवकाशप्राप्त आई० सी० एस० कमिश्नर भी हमारे दल में था। नौकरी से अवकाश प्राप्त करने पर भी वह जीवन की मौज मस्ती से अवकाश प्राप्त करने के मूड में एकदम ही नहीं था। कभी लड़खड़ाती किश्ती का बहाना ढूंढ़, अकारण ही मुझे बाहों में संभाल लेता, कभी ज़ोर-ज़ोर से इकबाल की कविता की आवृत्ति करने लगता और कभी मेरे पास झुककर पूछ बैठता, 'बता सकती हैं, यहां हाउसबोट का चलन कब से हुआ ?"

मेरे विदेशी पर्यटक भी, मेरी व्याख्या सुनने मेरे इर्द गिर्द घेरा बनाकर खड़े हो जाते। अपने धूप के चश्मे को साधकर मैं अपनी कण्ठनली का टेपरिकार्ड चालू कर देती कि किस प्रकार एक विदेशी ने कश्मीर की धरा पर प्रासाद बनाने की अनुमति मांगी थी, कश्मीर-नरेश का चतुर मस्तिष्क विदेशी की चाल को भांप गया था।—छोटा-सा प्रासाद बनाकर वह चतुर विदेशी किसी दिन कश्मीर की धरा को अपने प्रासादों से भर देगा। रात ही रात में एक नये कानून की सृष्टि हुई थी, विदेशी प्रासाद अवश्य बना सकता है, पर उस धरा पर उसका अधिकार नहीं रहेगा। विदेशी ने फिर भी बौद्धिक शतरंज की बाजी जीत ली थी, एक चलता फिरता प्रासाद जल में तराकर। स्थल पर बने प्रासाद के अधिकार का प्रश्न उठ सकता था, जल पर तैरते प्रासाद पर कैसी आपत्ति ?

मुसलमान कमिश्नर अपने चट किए गए प्रश्न का पट उत्तर पाकर खिल गया था। मेरी सलीमशाही जूती में कीचड़ लग गया था, चट से अपना रेशमी रूमाल निकालकर पोंछते हुए उसने कहा था, "आपको एयर होस्टेस किसने बना दिया, आई० ए० एस० में बैठी होतीं तो निश्चय ही कलक्टर बन जातीं।"

मैं कैसे कहती, कभी यही मेरी बड़ी दिज्यू ने भी कहा था।

प्रयाग के कुम्भ-स्नान के लिए जब मैं बड़ी अम्मा और जिठानियों के साथ त्रिवेणी तट पर गई थी, तब प्रयाग के पण्डे की विलक्षण स्मरण-शक्ति देखकर दंग रह गई थी। कुमायूं का कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसकी वंशवेलि की जड़ उसके मस्तिष्क में न हो, फलां जो फलां के बेटे, बाइं गाल पर तिल, एक आंख कानी ! धन्य था वह पण्डा, किन्तु आज मैं उस पण्डे को भी मात दे सकती हूं। बड़ी नाव में हमें भरकर वह संगम में डुबकी लगाने ले गया था। हाथ पकड़कर दोनों जिठानियां मुझे गहरे जल में खींच ले गई थीं, मिट्टी रेत से सनी वह पुरानी खखड़ नाव और फूलों से सजा कश्मीर का वह शिकारा, अन्तर था। अन्तर नहीं था, पुरुष की लोलुप दृष्टि में। जल में डुबकियां लगाने पर पतली साड़ी से झांकते मेरे देह लावण्य में उस प्रौढ़ पण्डे की भूखी दृष्टि और झील में तैरकर बाहर निकलने पर मुझे निगलती उस आई०सी०एस० प्रौढ़ कमिश्नर की भूखी दृष्टि में

क्या कुछ अन्तर था ? मेले की भीड़ को चीरती दोनों जिठानियों में मझली के उत्साह का अन्त नहीं रहता। यह माना उनके शुष्क जीवन की एक सुरम्य पिकनिक थी। भिखारियों की भीड़ की, शिव की बारात के सम्मुख वे ठगी सी खड़ी रह जाती। प्रत्येक अपंग, घिनौने भिखारी का इंटरव्यू लेते लेते, कभी अपनी हृदयहीन हंसी से दिशाएं गुंजा देती, 'मर, अभागे! नाक कहां गई रे तेरी! हाय हाय छोटी, देख देख, मुंह है ही नहीं क्या रे, खाना कैसे खाता है तू ?" लकड़ी की गाड़ी में लुजपुंज मांस के किसी लोथड़े से वह ऐसे बेतुके प्रश्न पूछती कि पण्डा भी बड़बड़ाने लगता, 'बहूजी, तीरथ करने आई हो या मेला देखने !"

चुप रहो, पण्डाजी, ऐसी चीजें क्या बार बार मिलती हैं देखने को! बहुत हड़बड़ी मचाई, तो श्राप दे दूंगी, तुम्हारी भी ऐसी ही गति होगी अगले जनम में!' हो होकर रसिक पण्डा मेरी जिठानी के कान ही के पास मुंह ले जाकर न जाने क्या कहता कि वह हंसती हंसती दुहरी हो जाती। स्पष्ट न सुन पाने पर भी पण्डे के अस्पष्ट स्वर मैंने सुन लिए थे। उस अभागे नासिकाविहीन भिखारी की दुरवस्था को किसी नासिका लोलुप बीभत्स रोग से संबंध जोड़कर त्रिपुण्डधारी पण्डा अपने अश्लील परिहास से रसिकचित्त का परिचय दे रहा था और मेरी दोनों जिठानियां अपने रामनामी दुपट्टे मुंह में ठूंसे हंसती हंसती दुहरी हो गई थीं।

कभी-कभी मुझे बड़ी अम्मा की तटस्थता पर झुंझलाहट हो आती। सब कुछ देखकर भी वे निरन्तर माला जपती रहतीं।

आए दिन हमारे यहां कीर्तन सभा होती। मार्बल मंडित गोल कमरे को गंगाजल से धोकर, बीच में यज्ञवेदी सजाई जाती। कर्मकांडी ब्राह्मणों की उदर पूर्ति के हेतु मेवे की खीर लबालब कड़ाही में छलकने लगती। उपासना-सभा का सभापतित्व ग्रहण करता, गैरिकवसनधारी सौम्याकृति का पाखंडी स्वामी आत्मानन्द। उसके गौर ललाट पर गोरोचन का टीका रोली से सदा रहता, दोनों बड़ी बड़ी आंखों की रेशमी पलकों का सौंदर्य, किसी भी सुन्दरी की पलकों से होड़ ले सकता था। निकट से देखने पर भी उसकी वयस की मरीचिका, चतुर से चतुर व्यक्ति को भी भटका सकती थी। उसके आने का समाचार, पूरे शहर में हवा की भांति उड़कर फैल जाता और देखते ही देखते, हमारा दालान डांडी और घोड़ों से भर जाता। भजन कीर्तन और झांझ करताल के संगीत से ऊबकर मैं सीमान्त के कमरे में बन्द हो जाती। उस धूर्त स्वामी को मैं नस नस पहचानती थी। मुझसे कहता था, 'राधिके!" जयदेव के पद गुनगुनाता वह निर्लज्ज, कभी बड़ी अम्मा के सामने ही कहता, 'राधे, मेरे पैर दाब दे।'

बड़ी अम्मा मेरी चुप्पी का दूसरा ही अर्थ लगातीं, शायद उतने बड़े महात्मा

वे चरण छूने मे मुझे सकोच हो रहा था।

"देख क्या रही है, बहू, दाव दे न पैर।" बडी अम्मा का आदेश मैं कैसे टाल सकती थी? सिर झुकाए उसके चरण दाबने लगती, तो मुझे लगता असरय घिनौने कीडे मेरी हथेलियो मे कुलबुलाने लगे है। कभी कभी सबकी दष्टि बचाकर, वह मेरी हथेली अपने पैरो के बीच दबा लता, उसकी भूखी आखा की दुनाली से वासना की गोलिया दनदनाने लगती, दूसरे ही क्षण मेरी कठोर मुख मुद्रा देख, वह नट की फुर्ती से अपने को सयम की रस्सी पर साध लेता और ऊचे स्वर म गीता के श्लोका की आवत्ति करने लगता। मेरे जी म आता, उसकी स्वण मडित पादुका उसके सिर पर द मारू, पर लोगो की दृष्टि मे उस परम हस बाबा की महिमा अपार थी उसका चरणोदक शीशियो म भरकर विदेश तक भेजा जाता था। मैं कुछ कहती, तो वह लपट मुझे ही लपेट लेता। फिर एक बात और थी, उस तात्रिक की अघोरी दृष्टि मे कुछ एसी सम्मोहिनी थी कि वह एक बार आखें चार होने पर देखने वाले को मनमानी उठक बठक करवा सकता था। मैं कभी भूलकर भी उसकी ओर नही देखती थी। उसने भाति भाति की चेष्टाए कर ली थी। कभी कहता, "राधे, देख तो मेरी आख मे शायद तिनका पड गया है, बडा गड रहा है।" मैं बडी दिज्यू को भेज देती। कभी वह फिर पुकार लगाता, "राधे, मेरी आखो म चद्रोदय बूटी तू ही डाल दे बडी और मझली ठीक से नहीं डाल पाती।" मैं कोई न कोई बहाना बनाकर टाल जाती। उधर देबूलला का दु साहस दिन दुगुना, रात चौगुना बढता जा रहा था। कई बार साहस बटोरकर बडी अम्मा से कहने भी गई, किंतु लाल थैली मे छिपे उनके हाथ माला फेरते रहते, आखो मे उनके अ तर की शुचिता छलक उठती, पाठ करते करत वे दशन के झटके से ही पूछती 'कुछ काम है?"

उनकी भोले शिशु की सी अम्लान हमी देखकर मुझे कुछ कहने का साहस ही न होता और मैं चुपचाप लौट आती। देबूलला पर बडी अम्मा का अगाध स्नेह था, फिर एक लम्बे अरसे से वे मेरी जिठानिया के साथ रहते आए थे, कभी किसीको उनके विरुद्ध शिकायत नही रही थी मेरे ही लिए व एकाएक इतने बुरे कसे हो गए? फिर मेरे पास सबूत ही क्या था? कही बडी अम्मा भी मुझे गलत समझ बैठी तो मेरा कहा ठिकाना रह जाएगा? जल म रहकर मगर से बैर नही हो सकता, फिर मगर क्या एक ही था?

मुक्ति का एक ही उपाय था। चद्रावती मसीह मेरे साथ पढती थी। हम दोनो की मत्री, विमाता की पैनी दृष्टि की लपटो से भी नही झुलस पाई थी। मिशन की नाना सुविधाओं की सीढिया पारकर वह एक ऊची नौकरी पा गई थी। दिल्ली म वह अपने मामा के साथ रहती थी, "मामा बहुत बडे-बडे लोगा

को जानते हैं, मुझे अनायास ही हवाई जहाज म एयर होस्टेस बना देत," उसने लिखा था, पर यह काला-क्लूटा चेहरा निगोडा बैरी बन जाता है । तू यहा चली आ और तेरे परी सी चेहरे का दखत ही वे तुझे एयर होस्टेस बना लगे ।"

कितना सुन्दर प्रस्ताव था ! पृथ्वी के भूखे भेडियो की पहुच से दूर उडकर एकदम आकाश मे ! मेरी दोनो जिठानिया स्वामी जी के साथ, सुदीघ तीथयात्रा-भ्रमण पर चली गई थी । बडी अम्मा के दोनो हाथ रहत लाल थली म और आखो ने छल प्रपच का पकडना नही सीखा था ।

मैं भाग गई, क्षण भर को सस्कारो की बेडिया न पैरो का जकड लिया, अन्तरात्मा धिक्कार उठी, छि छि, जिस थाली म खाया, उसीम छेद कर रही है । जिस बडो अम्मा ने पढाया, स्वत त्रता दी, उसीको छलकर भाग रही है ।' फिर आखो म तैरने लगती बाबूजी की कमनिष्ठ सतर पीठ, लोगो क व्यग्य बाणो से छिदता मौसी का करुण चेहरा, पीलिया रोग से उठे रुग्ण मातृत्वहीन कुन्दन की सहमी सहमी आखें । कभी कभी वह भागकर मुझस मिलने चला आता था, अब किसके पास जाएगा ?'

पर आसुओ के साथ साथ धुधली आकृतिया धीरे धीरे बह गइ—मै अब पृथ्वी छोडकर आकाश पर आ गइ हू । दरिद्र भाई की व्यथा हृदय को अभी भी कचोटती है । जब अन्तिम बार वह मुझसे मिलने आया, तो मौसी के बेटे की उतरन का अधरगा वही नीला ब्लेजर पहन था, जिसकी दोनो कुहनियो पर मैंने लाल पैबन्द लगा दिए थे । अब पैबन्द भी फटकर फडफडाने लगे थ । उसकी आखो की नीली पुतलिया, काच की नीली गोलियों-सी चमक उठी थी । हम दोनो भाई बहनो की आखें एक ही सी थी—गहरी नीली ।

चार मील दूर गणनाथ के स्कूल का उतार वह अपने लाहे के पहिये का, तार के चाबुक स भगाता मिनटो मे पार कर लेता, किन्तु लौटने की चढ़ाई का माग लोह क निर्जीव अश्व और सजीव अश्वपति दोनो को क्लान्त कर दता ।

दिन डूबते ही उसकी बालसुलभ उत्सुकता और बढ जाती,' दीदी, तुम क्या आसमान क सितारो म अम्मा का सितारा पहचान सकती हो ?" वह लटा लटा मुझस पूछता । नजाने किसन उससे कह दिया था कि मरने के बाद सब सितारे बनकर टिमटिमाने लगत है । दीदी, तुम्ह कोई दस लाख रुपय द, तो क्या तुम अकेली जागेश्वर के श्मशानघाट तक जा सकती हो ?' 'हा," मैं उसके निरथक प्रश्न का निरथक उत्तर देती और वह मेरे पास सरक आता ।

दस लाख रुपये क लोभ म, श्मशानघाट की यात्रा अकेली ही कर लेने की दु साहसिनी दीदी का दृढ सकल्प उसे विचलित कर दता ।

कभी-कभी हमारे ग्राम के आकाश का वक्ष विदीण कर घुमा

विमान निकल जाता, तो वह पगला सा आता, "अरे मदनिया हिरुवा देखो चीलगाडी ! दीदी, चीलगाडी, आहा रे, चीलगाडी, ओ हो रे चीलगाडी !"

अपनी पतली सींक सी बाहे आकाश की ओर नचाता वह गोल गोल घूमने लगता, "चीलगाडी रे चीलगाडी।"

आज उसकी दीदी उसी चीलगाडी मे न जाने कितने देश विदेश घूम चुकी है। राजसी अतिथियो के वायुयान म मेरी उपस्थिति अनिवाय हो उठी है। मेरी नीली आखें, गोरा रग कभी कभी किसी विदेशी अतिथि को उलझन म डाल देत हैं। 'एक्सक्यूज मी क्या आप तुर्की है ?" वह मुझसे पूछता है—मैं हस देती हू। अपनी भुवनमोहिनी हसी को मैंने अब पहचान लिया है। भारत के वेदा त, दशन, सगीत से लेकर करी पाउडर की भोजन सामग्री साडी पहनने की शिक्षा सबका विस्तत विवरण देकर मैं अतिथियो की आकाश यात्रा को आश्चयजनक रूप से मनोरजक बना देती हू। कि तु अचानक हसी कहकहा और प्रश्नोत्तरा के बीच मैं उदासी म डूब जाती हू। क्या पता नाचे विराट धरती पर वायुयान का शब्द सुन, नीले कनेजर के लाल पैब द फडफडाता अपने लोहे के अश्व को तार के चाबुक से साधे कोई चीख चीखकर अपने साथियों को पुकार रहा है "अरे, मदनिया, हिरुवा देखो चीलगाडी "

सहसा मैं परिश्रम से मुखस्थ किया गया अपना वेदा त दशन और साडी-शिक्षा का पाठ भूल जाती हू, मुझे लगता है आकाश के नील कनेजर मे डूबते सूय की अरुणशिखा के दो फटे पैब द फडफडा रहे हैं और दो दुबल सींक से हाथ आकाश की ओर उठा उठाकर कोई नाचता घूमता गा रहा है, "आहा रे, चीलगाडी ! ओहो रे चीलगाडी !"

सती

गाडी ठसाठस भरी थी स्टेशन पर तीर्थयात्रियो का उफान सा उमड रहा था। एक तो माघ की पुण्यतिथि मे अर्ध-कुम्भी का मेला उसपर प्रयाग का स्टेशन। मैंने रिजर्वेशन स्लिप म अपना नाम ढूढा और बडी तसल्ली से अन्य तीन नामो की सूची देखी। चलिए तीनो महिलाए ही थीं पुरुष सहयात्रियो के नासिकागजन से तो छुट्टी मिली। दो महिलाए आ चुकी थी, एक जैसा कि मैंने नाम से ही अनुमान लगा लिया था महाराष्ट्री थी और दूसरी पजाबी। तीसरी मैं थी और चौथी अभी आई नही थी। मैं एक ही दिन के लिए बाहर जा रही थी इसीसे एक छोटा बटुआ ही साथ मे था। आसपास बिखरे दोनो महिलाओ के भारी भरकम सूटकेस, स्टील के बक्स और मेरुपर्वत से ऊचे ठसे कसे होल्डाल देखकर मैंने अपने को बहुत हल्का-फुल्का अनुभव किया। वैसे भी मैं सोचती हू बक्स होल्डालहीन यात्रा मे जो सुख है वह अन्य किसीमे नही। चटपट चढे और खटखट उतर गए, न कुलियो के हथेली पर धरे द्रव्य को अवज्ञापूर्ण दृष्टि से देखकर 'ये क्या दे रही हैं साहब' कहने का भय न सहयात्रियो के उपालम्भ की चिन्ता। मेरे साथ की महाराष्ट्री महिला ने अपने वृहदाकार स्टील के बक्स एक के ऊपर एक चुनकर पिरामिड से सजा दिए थे लगता था वह प्रत्येक वस्तु के लिए स्थान और प्रत्येक स्थान के लिए वस्तु की उपादेयता मे विश्वास रखती थी। वह स्वय बडी शालीनता से लेटकर एक सीध मे दो तकिये लगाए एक मराठी पत्रिका पढने मे तल्लीन थी। दूसरी पजाबी महिला के पास एक सूटकेस, टोकरी और बिस्तरा ही था, पर तीनो बेतरतीबी से बिखरे पडे थे। उनका एक सुराहीदान, जिसकी एक टाग, अधिकाश सुराहीदानो की भाति कुछ छोटी थी, बार-बार लुढककर उनको परेशान किए जा रहा था। वे बेचारी चश्मा उतारकर रखतीं, हाथ की जासूसी अग्रेजी पुस्तक जिसे पढने मे उन्हें पर्याप्त रस आ रहा था, औंधी कर बथ पर टिकातीं, झुझलाकर सुराहीदान ठिकाने से लगाकर जैसे ही हाथ की पुस्तक मे रस की डुबकी लगातीं कि सुराहीदान फिर लुढक जाता। मुझे उनकी उलझन देखकर बडी हसी आ रही थी, वैसे मैं उनकी परेशानी काफी हद तक दूर कर सकती थी क्योंकि सुराहीदान मेरे पास ही धरा था। मैं उसकी लगडी टाग को अपनी चप्पल से टिकाकर लुढकने से रोक सकती थी। पर सुराही को ऐसे बेतुकी काठ की सवारी मे साथ लेकर चलनेवालो से मुझे कभी सहानुभूति नही रहती। पजाबी महिला सम्भवत

किसी मीटिंग मे भाग लेने जा रही थी, क्योंकि उनके साथ एक मोटी-सी फाइल भी चल रही थी, जिसे खोल वे बीच बीच में हिल हिलकर कुछ आंकडो को पहाड़ों की भांति रटने लगतीं और फिर बन्द कर उपन्यास पढने लगतीं। उनकी सलवार, कमीज दुपट्टा यहा तक कि रूमाल भी खद्दर का था और शायद उसीके सपर्प से उनकी लाल नाक का सिरा और भी अबीरी लग रहा था। उनके चेहरे पर रोब था, किन्तु लावण्य नहीं। रग गोरा था किन्तु खाल म हाथ की बुनी खादी का सा ही खुरदरापन था। ठुड्डी पर एक बड़े से तिल पर दो-तीन लम्बे बाल लटक रहे थे, जिन्हें वे अगुली मे लपेटती छल्ले सा घुमा रही थीं। या वे प्रौढ़ा कुमारी थीं, या फिर विधवा क्योंकि चेहरे पर एक अजीब रीतापन था जीवन के उल्लास की एक आध रेखा मुझे ढूढने से भी नही मिली। जासूसी पुस्तक को थामने वाले उनके हाथों की बनावट मर्दानी और पकड मजबूत थी। ये वे हाथ नही हो सकते, मैं मन मे सोच रही थी, जो बच्चो को मीठी लोरी की थपकमें देकर सुलाते हैं पति की कमीज मे बटन टाकते हैं, या चिमटा सनसी पकडते हैं। ये वे हाथ नही हैं जिनकी हस्तरेखाओं को उनकी कमरेखाए धूल कालिख की दरारो से मलिन कर देती हैं।

मेरा अनुमान ठीक था, स्वय ही उन्होने अपना परिचय दे दिया। वे पजाब के एक विस्थापित स्त्रियो के लिए बनाये गये आश्रम की सचालिका थीं। हाल ही म विदेश से लौटी थीं और लखनऊ की किसी समाज-कल्याण गोष्ठी मे भाग लेने जा रही थीं। समाज सेविकाओ मे उनका नाम अग्रणी था।

महाराष्ट्री महिला के परिचय का कोई प्रश्न ही नही उठता था। उस स्वल्प भाषिणी सुन्दरी प्रौढा ने हममे से किसीको भी, मैत्री का हाथ बढाकर प्रोत्साहित नही किया। हाथ की मराठी पत्रिका को पढती वे कभी स्वय ही मुसकराती जा रही थी और कभी गहरी उदासी से गदन मोड ले रही थीं। स्पष्ट था कि किसी कुशल मराठी कथा लेखक की सिद्ध कलम का जादू उन्हे कठपुतली-सी नचा रहा था। वे हमारे डिब्बे मे होकर भी नही थीं। उनके गोरे रग पर उनकी लाल शोलापुरी साडी लपटें सी मार रही थी। गोल परिपाटी से बाधा गया जूडा एडो चुम्बी केशराशि के मूलधन का परिचय दे रहा था। कानो में सात मोतियो के वर्तुलाकार कर्णफूल थे और गले मे था दुहरी लड का मगलसूत्र, जिसे वे अभ्यास वश बार बार दातो मे दबा ले रही थीं। उनके सामान पर सम्भवत उनके पति के नाम का लेबल लगा था—मेजर जनरल वनोलकर और वे वास्तव मे थीं भी मेजर जनरल की ही पत्नी होने के योग्य। पूरे चेहरे मे दोनां आखें ही सबसे ज्वलन्त आभूषण थीं। वे कुछ भी नही बोल रही थीं पर वे बडी बडी आखें निरन्तर हसती मुसकराती, परिचय देती, मजाक उडाती जा रही थीं। कभी वे मुझे देखतीं कभी उस पजाबी महिला को पर आखें चार होते ही बडी अवज्ञा से दृष्टि फेर मगलसूत्र दातो में दबा पत्रिका पढने लगतीं।

गाडी ने सीटी दी और ठीक उसी समय हमारे साथ की चौथी महिला ने डिब्बे में प्रवेश किया। गाडी मानो उन्हीं के लिए रुकी थी, [illegible] की फुफकारें छोडती गाडी चली और उसी धक्के के साथ वे महिला, धड़ से सीट पर लुढक पडीं। उनके हाथ में बेंत की बनी एक छोटी-सी टोकरी थी और बाजू में चौकोर बटुआ दबा था। 'ओह! समझा था गाडी छूट ही जाएगी। बाप रे बाप, कैसी दौड लगानी पड़ी!" मैं उन्हें देखती ही रह गई। समाज-सेविका ने जासूसी उपन्यास बन्द कर दिया, मराठी [illegible] ने चश्मा उतारकर हाथ में ले लिया और बैठ गई।

हम तीनों की ही दृष्टि उस चौथी पर आबद्ध हो गई। दोष हमारा नहीं था, वह चीज ही देखने लायक थी।

हमारा घूरना उन्होंने भाँप लिया, 'केम बेन, बहुत लम्बी हूँ ना मैं!" वह हँसी 'छह फुट साढे दस इंच हूँ मैं एक्चुअली, आवर भारत की सबसे लम्बी नारी! चलिए, यह अच्छा है कि इस डिब्बे में आज हम चारों महिलाएँ ही हैं, नहीं तो मुए पुरुष भी मुझे घूरते।" फिर वे धनाधन हमारा इण्टरव्यू लेने लगीं। पहला प्रहार मुझ पर ही हुआ। समाज सेविका ने ठक-ठक कर दो तीन रूखे उत्तरों के चाटे धर दिए।

महाराष्ट्री महिला ने 'हिंदी नहीं जानता' कह पीठ फेर ली, तो उस महिला ने त्रुटिहीन अंग्रेजी का धाराप्रवाह भाषण झाड दिया, "मुझे मदालसा कहते हैं मदालसा सिंघाडिया। कल ही प्रिटोरिया से आयी हूँ, अपने पति की मृत देह लेने।" मैं चौंक गई। समाज सेविका ने अपने रूखे व्यवहार पर लज्जित होकर, चट आगे बढ उसके दोनों हाथ थाम लिए, "अरे राम राम, कोई दुर्घटना हो गई थी क्या?" उन्होंने बडे दर्द से पूछा।

मदालसा की वेशभूषा में सद्य वैधव्य का कहीं कोई चिह्न नहीं था। वे लम्बी होने पर भी पठानिन सी गठे कसे शरीर की लावण्यमयी नवयौवना थीं। उनके बाल किसी दामी सैलून में कटे सँवरे लग रहे थे। अपनी धानी रेशमी साडी को वे हाफ पैंट की भांति ऊपर चढा, दोनों पैरों की पालथी मार, आराम से जम गई।

"असल में पिछले वर्ष, एक पर्वतारोही दल के साथ मेरे पति भारत आए थे, वहीं एक एवलैंश (तूफान) के नीचे दबकर उनकी मृत्यु हो गई।"

"च्च च्च च्च, तो क्या मृत देह अब मिली?" मैंने पूछा।

"हाँ, भारत सरकार ने मुझे सूचित किया, तो भागती आई। बर्फ में दबी देह, सुना ज्यों की त्यों मिली है। मेरे बुने स्वेटर का, जिसे उन्होंने पहना एक फंदा भी नहीं टूटा।"

मृत पति की स्मृति ने उन्हें भाव विभोर कर दिया। अद्

रूमाल निकाल, वे कभी आंखें पोंछने लगीं, कभी अपनी सूपनखा सी लम्बी नाक। बेचारी करती भी क्या! कोई भी जनाना रूमाल उस नाक का अस्तित्व नहीं सम्भाल सकता था।

अचानक हम तीनों को, बेचारी मदालसा का एक वर्ष पुराना वैधव्य, एकदम ताज़ा लगने लगा।

"तो क्या अब आप अपने हसबैंड' का 'डैड बाडी' लेकर प्रिटोरिया 'फ्लाई' करेगा?" महाराष्ट्री महिला ने पूछा।

"नहीं बेन!" मदालसा सीट पर लेट गई, तो लगा एक लम्बे खजूर का कटा पेड़ ढह गया।

एक लम्बी सांस खींचकर उन्होंने कहा "मैं असल में सती होने भारत आई हूं!" हम तीनों को एक साथ अपने इस उत्तर का क्लोरोफार्म सुंघा सती ने एकदम आंखें मूंद लीं, जैसे वह चाह रही थीं कि अब हम उन्हें शांति से पड़ी रहने दें।

ऐसा भी भला किसीने सुना था इस युग में! सुस्पष्ट उच्चारण में अंग्रेज़ी बोलने वाली, छह फुट साढ़े दस इंच की यह काया, कल बर्फ़ में दबी पति की एक साल बासी लाश को छाती से लगा, जल भुनकर राख हो जायेगी।

"नहीं, आपको ऐसी मूर्खता करने का कोई अधिकार नहीं है। यह एक अपराध है, क्या आप यह नहीं जानतीं?" खादीधारी महिला उठकर मदालसा के सिरहाने बैठी, ऐसे गम्भीर भाषण की गोलाबारी झाड़ने लगी, जैसे चिता सचमुच प्रज्वलित हो चुकी है और सती लपटों में कूदने को तत्पर है। 'भावावेश के दुर्बल क्षणों में नारी कभी बड़ा बचपना कर बैठती है इसका मुझे व्यापक अनुभव है। अभी हाल ही में मेरे आश्रम की दो युवतियां ऐसी मूर्खता कर बैठीं। मुझे ही देखिए भारत विभाजन के समय मेरे पति की हत्या कर दी गई पर *मैं क्या सती* हो गई? सिली सेंटिमेंट? यदि मैं भी उस दिन आपकी भांति सती हो जाती तो आज यह देह दीन-दुखिया के काम आ सकती थी? पहले मॉडल जेल की अध्यक्षा रही और अब गिरी बहनों के आश्रम की देख रेख करती हूं।"

'ना, बेन, ना।" मदालसा ने करवट बदली, "मैं तो सती होने ही भारत आयी हूं। हाय मेरा नीलरतन, नीलू डार्लिंग!" कह वह फिर मर्दाने रूमाल में मुंह छिपाकर सिसकने लगी।

"आप चाहें तो मैं आपके साथ चल सकती हूं आपके पति के अंतिम संस्कार में सहायता कर आपको अपने आश्रम में ले चलूंगी," समाज सेविका ने अपने उदार प्रस्ताव का चुग्गा डालकर मदालसा को रिझाने की चेष्टा की।

मदालसा बड़ी उदासी से हंसी "धन्यवाद बेन, पर ब्रह्मा भी अब मुझे अपने निश्चय से नहीं डिगा सकते। यह रोग हमारे खानदान में चला आया है। मेरी

परनानी तो राजा राममोहन राय और सर विलियम बेंटिक को भी घिस्सा देकर सती हो गई थी। और नानी के लिए तो लोग कहते हैं कि नानाजी की मृत देह गोद म लेकर चिता म बैठते ही, स्वय चिता धू धूकर जल उठी थी। फिर मेरी मा और अब मैं।

"खैर, हटाइए भी, पता नही किस धुन म आकर आप लोगो से कह गई। 'आई शुड नाट हैव टोल्ड यू' (मुझे आपसे नही कहना चाहिए था)। चलिए हाथ मुह धोकर खाना खा लिया जाए। क्यो, क्या खयाल है ?" उन्होने अपनी कदली स्तम्भ सी जघाओ पर दोनो हाथो से त्रिताल का टुकडा-सा बजाया।

हम तीनो को एक बार फिर आश्चय उदधि म गोता लगाने को छोड, वे टोकरी से एक स्वच्छ तौलिया, साबुन निकाल गुसलखाने मे घुस गइ।

उनके जाते ही हम तीना परम मैत्री की एक डार म गुथ गए।

"अजीब औरत है! क्या आप सोचती है यह सचमुच सती होने जा रही है ?" मैंने मराठी महिला से पूछा।

"देखिए, मरनेवाला कभी ढिढोरा पीटकर नही मरता।" वह हसकर बोली, "हमको तो इसका यह स्क्रू ढीला लगता है," उ होने अपन माथे की ओर अगुली घुमाई "इस जमाने मे ऐसे सती फती कोई नही होती।"

"क्षमा कीजिएगा" खादीधारी महिला बडी गम्भीरता से बोली, "मुझे औरतो का अनुभव आप दोना से अधिक है। मैं ऐसी भावुक प्रकृति की भोली औरतो को चेहरा देखत ही पहचान लती हू। आखें नही दखी आपने ? कितनी निष्पाप, पवित्र और उदार है। मुझे पक्का विश्वास है कि पति की मृत देह देखते ही यह वही मूखता कर बैठेगी, जिसका यह खुले आम ऐलान कर रही है। लगता है मुझे अपना प्राग्राम कैसिल कर, इसके साथ जा पुलिस को खबर देनी होगी। तभी इसे बचाया जा सकता है।"

इतने ही मे मदालसा, हाथ-मुह धोकर ताजा चेहरा लिए आ गइ। मेल गाडी वन, ग्राम, नदी, नाले, पुल कूदती फादती सर्राट से भागी जा रही थी। मदालसा ने अपनी टोकरी खोलकर नाश्तादान निकाल लिया। जसे खरबूजे को देखकर खरबूजा रग पकडता है ऐसे ही एक यात्री को खाते देख दूसरे सहयात्री को भी भूख लग आती है। क्षण भर म सतीप्रथा पर चल रही बहस, कपूर धुए की भाति उड गई और चटाचट नाश्तेदान खुलने लगे।

"आइए ना, एक साथ बैठकर खाया जाए।" मदालसा न कहा और बडे यत्न से, स्वच्छ नैपकिन बिछा, छोटे छोटे स्टील के कटोरदान सजाने लगी।

"धयवाद!" मैंने कहा "पर हमारे साथ भी तो खाना है इस कौन खाएगा ?"

'वाह जी वाह, उसे हम खाएगी, ईश्वर ने यह छह फुट साढे दस इच दुग

आखिर बनाया किसलिए है ?" उनकी भुवनमोहिनी हसी ने हम पराजित कर दिया। वैसे भी हम तीना ने, एक दूसरी को, वाक्दृष्टि से, सती के घृत पक्वान्न को आखो ही आखो म घूरते चखते पकड भी लिया था। सुनहरी मोयनदार *कचौडिया थी, मसाला की गहरी पत म डूबी सब्जिया थी, रायता था, चटनी थी*—और थ ठास ठासकर बाधे गए, मेवा जडे बूदी के लड्डू ! "यह तो सफर का खाना नही, अच्छा-खासा विवाह भोज है," समाज सेविका की आखो स लार टपक रही थी, "बडा हैवी खाना लकर चली हैं आप !" उन्होने कहा और कचौडिया पर टूट पडी।

हम तीनो के पास, भारतीय रेल यात्रियो के साथ युग युगान्तर से चली आ रही वही पूरी तरकारी और आम के अचार की फाकें थी। अपना खाना खाया ही किसने ! मदालसा के स्वादिष्ट भोजन को चटखारे ले लेकर हम तीना ने साफ कर दिया, उधर वे अकेली ही हम तीना के नाश्तादानो को जीभ से चाट गई थी। विधाता ने सचमुच ही उनके शरीर के दुग मे असीम गोला-बारूद भरने के लिए अनेक कोष्ठ प्रकोष्ठा की रचना की थी। महातृप्ति के कई तार और मन्द्र सप्तक के डकार लकर, हाथ मुह धो मदालसा ने टोकरी म से एक मस्जिद क गुम्बद के आकार का पानदान निकाला।

"यह मेरे नीलू न मुझे बगदाद स लाकर भेंट किया था। उसे पान बेहद पसन्द थे, इसीस एक ढोली मघई पान और यह पानदान लेकर ही कल चिता मे उतरूगी।" इसी शहीदाना अदा से, हम तीना को घायल कर उन्होने केवडा, इलायची और मनपुरी सुपारी से ठसा बीडा थमाया।

सतीप्रथा पर फिर जारदार बहस छिड गई— हाय मेर अन्तिम सफर की प्यारी साथिनो, तुम अब हमे नही रोक सकती," मदालसा लेट गइ और बडी सधी आवाज म गाने लगी "'न जाणयू जानकी नाथे सवारे शु थवानु छे' समझी इसका अथ ?" उ होने हसकर मुझसे पूछा, जानकीनाथ भी यह नही जान सके थ कि सुबह क्या होगा।"

अब मुझे लगता है उस गुजराती पद की व्याख्या उन्होने सम्भवत हमारे ही हित म की थी ! 'चलो जी अब सो जाओ सब आज इस पृथ्वी पर मेरी यह अन्तिम निद्रा है बेन, बहस व्यथ है। चलो गुडनाइट और बहुत प्यारे प्यारे सपने दिखें तुम तीनो को।" सचमुच ही उसकी शुभकामनाओ ने जादू का असर किया। ऐसी नीद तो पहले कभी आई ही नही थी ! और सपने ?

कभी लगता—जगमगाता आभूषणो के ढेर म गाते खा रही हू, हीरे के हारों से गदन टूटी जा रही है बाजूब द अगूठियो के भार स हड्डिया खिसकी जा रही हैं। और साडिया ? क्या क्या रग हैं कैसा चिकना रेशम ! साडिया के विशाल उदधि मे रगीन कीमती साडियो की तरगें रह रहकर उठ रही हैं। इससे

प्यारे सपने और क्या दिख सकते थे ? पर सपनो का अन्त भी समुद्र के ज्वारभाटे की ही भाति हुआ—वास्तविकता की अतिम तरग ने पटाक से हम तीनो को धोबी पछाड दी, आखें खोली तो सती गायब थी।

"हाय मेरे स्टील का बक्स !" मिसेज वनोलकर बथ से उतरते ही लडखडा गइ, "उसमे तो मरे विवाह का जडाऊ सेट था। लगता है वह सती की बच्ची हमे कुछ विप खिला गई ! सिर फटा जा रहा है।" उनका गला भर्रा गया। हा, ठीक ही तो कह रही थी, मुझे कोई जसे सावन क झूले की ऊची ऊची पेंगें दे रहा था, पूरा डिब्बा गोल गोल घूम रहा था पखे के चारो ओर बल्ब, बल्ब के चारो ओर छत और छत के इद गिद कई रेशमी साडिया और भारी-भारी आभूषण पहने स्वय मैं लटटू सी घूम रही थी। कभी जी मे आ रहा था जोर जोर से हसू, कभी दहाड़ें मारकर, रोने को तडप रही थी। बहुत पहले एक बार भाभी ने भग खिलाकर ऐसी ही अवस्था कर दी थी।

सुना गया है कि कुकुरमुत्तो को पीसकर बनाया गया विप भी ऐसे ही मीठे सपने दिखाता है। उनको खाते ही गहरी नीद आ जाती है, जो कभी कभी दिना तक नही टूटता।

मीठे सपने दिखा सजग मनुष्य को अद्धविक्षिप्त सा कर देने वाला यह अवश्य वही विष होगा। समाज सेविका दोनो हाथो स सिर थामे बिलख रही थी, 'हाय, मैं तो लुट गई ! मेरे सूटकेस म आश्रम का दस हजार रुपया था।"

और मैं ? सहसा गोल गोल घूमते रेल के डिब्ब मे गाल घूमत मेरे दिमाग ने मुझे सूचित किया, 'तुम्हारे बटुआ ल गई है, बटुआ !"

और ले भी क्या जाती ! सामान तो कुछ था नही पचपन रुपये और एक फस्ट क्लास का वापसी टिकट। सती की चिता मे, मैं यही सामा य सी घृताहुति दे पाई। चेन खीचकर गाडी रोकी गई सचमुच ही समाज सेविका को पुलिस को खबर देनी पडी, पर सती को बचाने नही, पकडवाने के लिए। वह मिल जाती तो शायद, हम तीनो स्वय उसकी चिता चुनकर उसे झोक देती। पर कहना व्यथ है, आज तक पुलिस उस सती मैया के फूल नही चुन पाई !

ज्येष्ठा

कभी कभी, नारी ही नारी के लिए एक जटिल पहेली बन उठती है। वैसे एक नारी के जिस छलनामय स्वभाव का घनिष्ठ परिचय दूसरी नारी को अपने पारिवारिक जीवन मे पग पग पर मिलता रहता है, वह शायद किसी पुरुष को कभी नही मिल सकता। जिठानी, देवरानी ननद भाभी यहा तक कि एक मा की जाई दो सगी बहनो को भी कभी कभी ईर्ष्या, द्वेष, कामना या लोभ की आरी चीरकर विलग कर देती है। वैमनस्य के अखाडे मे जूझती वीरागनाए किसी कुशल फेंसिंग के कलाकार की दक्षता से प्रतिद्वद्विनी को कभी जिह्वा के प्रहार से धराशायिनी कर देती है और कभी छल बल से। जहा मूर्ख पुरुष क्रोध से अधे बन कभी कभी फासी के फदे को भी भूलकर, शत्रुमुड गडासे से अलग कर देत है वहा प्रतिशोध लेने के लिए नारी कभी ऐसी अविवेकपूर्ण मूखता नही करती। वह शत्रु की सुख्याति, सुनाम यहा तक कि उसका सवस्व भी हरण कर सकती है केवल अपनी तीखी जिह्वा के कुटिल प्रहार से। इसमे कोई स देह नही कि नारी ही नारी की सबसे बडी शत्रु है। पिरी की सबसे बडी प्रतिद्वद्विनी थी स्वय उसकी भावी सास। पूरे बीस वष तक उसके विवाह माग म वह नागिन सी अडी खडी फुफकारती रही थी और उन बीस वर्षों म किस दु साहस से पिरी उसी माग से लुक छिपकर अपने प्रेमी स मिलती रही थी—मैं सब जानती थी। पर आज यह कैसे हो गया ?

यह छलनामयी मुझे अपनी क्षणिक झलक दिखाकर नारी स्वभाव के रहस्य मय अतलाणव मे डुबकिया लगाने छोड गई है। अब अपनी मूखता पर क्षोभ भी होता है। क्यो वही उसे कधे पकडकर नही झकझोर दिया ? कम से कम वह भोला चेहरा, पल भर को तो फक पडता। मूख हतबुद्धि सी मैं फौवारे के पास खडी बेंच पर निलज्जता से चाव मे चोच मिलाए उस कबूतरी जोडे को देखती ही रह गई थी। सामान्य रूप से हाथ बढाने पर ही मैं उस कबु कठ म झूलते मगल सूत्र के बीच गुथे मूगे को बडी निममता से खीच सकती थी, पर जोडे के पीछे मुडने से पहले ही मैं स्वेच्छा से स्वय ही मुड गई। ऊपर की सडक पर पहुचकर देखा तो बेंच खाली थी। सीजन की उद्देश्यहीन भीड के अथाह प्रवाह म प्रेमी युगल खो चुके थे।

आज स कोई बीस वष पूव, पिरी ने अपनी सगाई का समाचार मुझे स्वय

तार देकर दिया था। मैं सच कहती हू कि उस दिन उसकी सगाई के समाचार से मुझे जितनी प्रसन्नता हुई थी, उतनी शायद अपनी सगाई के दिन भी नही हुई। न जाने कितनी बार ऐसे ही हडल पार करने म पिरी के शरीर और मन, दोनो बुरी तरह क्षत विक्षत हो चुके थे।

लाखो मे एक न होन पर भी उस चेहरे की लुनाई मे एक अनुपम आकर्षण था, लम्बी छरहरी देह, गेहुआ रग, सुतवा नाक और ऊचे उठे कपोल। आखें बडी न होने पर भी चौबीसो घण्टे उज्ज्वल हसी से चमकती रहती, भूरे रेशम की लच्छिया से केश सामान्य हवा के झोके से ही मनमोहक घेरे म चेहरे को बाध लेत, उसपर उसका आनन्दी स्वभाव पल भर के पाहुने का भी अटूट मैत्री के ब धन म जकड लेता। पाच मिनट के परिचय को भी वह पाच वष का परिचय बना सकती थी। इतने वर्षों म भी उस कमनीय चेहरे का कैशोर्य नहीं गया है। जैसे कूर्माचल का अस्ताचलगामी प्रौढ सूय, जाते जाते भी डूबती किरणो *का अद्भुत उज्ज्वल जाल बिछाता पवतश्रेणियो को अनोखी आभा से आलोकित* कर जाता है, वैसे ही उससे विदा लेता यौवन बडी हठीली धष्टता से अडता, उस लुभावने चेहरे को और भी लुभावना बनाता चला गया था। मैं तो उसे देखकर दग रह गई थी। सामान्य गेहुआ रग ऐसी दूधिया शुभ्रता म कैसे बदल गया ? सुना तो यही था कि बसन्त और यौवन, पद्मपत्र के जलबिन्दु से ही क्षण स्थायी हाते हैं—पर इन बीस वर्षों मे पिरी क्या और भी सुन्दर नही बन गई है ! वही बल खाती देहयष्टि, मोटी काली चोटी उसी कौमार्यावस्था की अल्हडता से सामने झूल रही थी, कान के पास चन्द्रमल्लिका का एक बडा सा पुष्प सचलाइट सा चमक रहा था, ठीक जैसे हवाई द्वीप की कोई लावण्यमयी धष्टा किशोरी विदशी पयटक के पाश्व मे कान म फूल खोसे बैठी, किसी एयर लाइन्स का विज्ञापन बनी मुस्करा रही हो। क्या कहू, लिखने मे तो निविड ब्रीडा से लेखनी स्वय सकुचित हो रही है, किन्तु मर्यादाहीन औदार्य से प्रदर्शित उस सुडौल नगी पीठ पर आसपास खडे कितने ही पयटको की लोलुप दृष्टि गडते देख मैं लज्जा से गड गई। अविश्वास स मैंन अन्तिम बार फिर दोनो को देखा—नही सन्देह के लिए सामान्य सी भी गुजाइश नही। दोनो वही थे।

पर यह हो कैसे गया ? गत वष जिसके स्पश से सिहरकर, वह मेरे पास भाग आई थी और जिसके अप्रत्याशित प्रणय निवेदन की अदभुत कहानी सुनाने म बार बार भय से कापती सचकित दृष्टि से द्वार को ऐसे देखने लगती थी जैसे कही वह अचानक आकर खडा न हो गया हो, जिसकी मृत्युकामना के लिए उसने जागन देवी के वरदायी मन्दिर म निरन्तर तीन माह तक घृतदीप जलाया था जो कभी स्वय अपनी मा के साथ, उसके सौभाग्य द्वार का पथ अवरुद्ध कर, हठीला प्रहरी बन खडा हो गया था, क्या वह अन्त म उसीकी प्रणय-डोर से

खिची चली गई ?

पिरी का नाम था हरिप्रिया, एक ऐसा प्रचलित नाम, जो कभी पहाड की हर तीसरी लडकी का हुआ करता था, पर पिरी हर तीसरी लड़की-सी साधारण नहीं थी। शायद यही कारण था कि वह सोलह वर्ष की भी नहीं हुई थी कि उसकी कुडली हाथो ही हाथो म तौली जाने लगी। पितामह मूगफली बचते थे किंतु पिता ने कठोर दारिद्रय को अपने चरित्रबल स दूर ठेलकर प्रतिष्ठा एव समृद्धि पाई थी, इसीस वे कठोर मितव्ययी। लाग कहते थे, कि उनकी मितव्ययिता ही उनकी सरला पत्नी की अकाल मृत्यु का कारण थी। जो भी हो, उनकी मितव्ययिता स हार मानन वाली पिरी नहीं थी, प्राय ही वह पिता के इधर-उधर छिपाए रेजगारी के स्तूप स, मुट्ठी भर धवन्नी अठन्निया बटोरकर, अपनी काच के बटन सी चमकती आखें चमकाती छत से हमारी पथरीली छत पर कूद आती, "अभी अभी मोहनलाल निकलगा—तू बुला लेना, समझी, छक कर टिकिया खाएगे।" मैं उसक दु साहस को देखकर काप जाती, कही उसके पिता ने देख लिया तब ? फटी कमीज उल्टीकर, कब दिस छन के पत्थर पर जमा बूढा जुए बीनना छोड, हमारी चोटी पकडकर घसीट लेगा—क्या कुछ ठीक था ? पर सध्या ढलते और मीठे गल की सुरीली हाक से मोहनलाल न जाने कितनी किशोरियो की चटोरी जिह्वाओ को आमन्त्रित कर देता, 'पोटेटो की टिकिया डबल म एक।'

मोहनलाल को भला तब अल्मोडा की कौन किशोरी नही जानती थी ? अधेड चेहरा, स्याहरग और सीक सी अगुलियो म गजब की फुर्ती, पतले, तवे पर सिकती गुलाबी आलू की टिकिया, चुटकिया स छिडका गया मसाला और खट्टी-मिट्ठी चटनी डाल बनाई गई अमृत बूटी ? कैसा अद्भुत व्यक्ति था वह ! रामलीला म बनता था केवट और उसी चौपाई के लहजे म जब मीठी हाक लगाता—"पोटेटो की टिकिया—डबल म एक," तो एक स एक सनातनी महिलाए भी टिकिया खाने पिछवाडे का द्वार खोल लती, "रामचन्द्र जी का केवट है, भला उसके हाथ की टिकिया खाने म कैसा दोष ?" निपुणिका पुत्री कब कितनी रेजगारी पारकर लेती है, पिता को पता भी नही रहता।

पहली बार सुदरी पुत्री की कुडली मागी गई तो बेचारे बडे उत्साह से मृत पत्नी के हरिण के चमडे से मढे जीर्ण पिटारे स कुडली निकाल चटपट दे आए थे। उसी सध्या को खोटे सिक्के सी कुडली लौट आई तो उनका माथा ठनका। देने वालो ने तो यह कहकर लौटा दी थी कि कन्या के तीन ग्रह लडके से बडे हैं, पर अल्मोडा भर की कुडलियो की रेखाओ का लखा जोखा रखने वाले भट्टजी ने कुडली का भेद खाल दिया, "जहा जहा पात्र से बडा भाई होगा वहा-वहा स कुडली ऐस ही लौट आएगी पतजी, कन्या का जेष्ठा नक्षत्र है।'

मूर्खा पत्नी पर मन ही मन उन्हें क्रोध भी आया था, क्या मरने से पहले किसी-को कुडली दिखा नही सकती थी अभागी ? उन्हे पहले पता होता तो दस पाच रुपया देकर भट्टजी से ही दुष्ट ग्रह को मटियामेट करा देते, उनके पुत्र अबी ने क्या पुत्री का अष्टम मगल, भट्टजी के दक्ष स्याहीमेट रबर से नही मेट दिया ? पर दूसरा कटु सत्य अचानक पतजी को भी अगूठा दिखाने लगा—क्या कर लिया था कन्या की कुडली मे जालसाज़ी करके ? क्या भाग्य का लिखा ग्रह भी मिटा सके थे उत्कोच से ? विवाह के तीसरे ही महीने पुत्री विधवा हो गई थी। फिर उन्होने बड चातुय से कुडली प्रवासी बिरादरी मे भेजी, पर पिरी का ज्येष्ठा नक्षत्र, फन उठाए डसने को तत्पर घातक पदमनाग सा ही भावी पति के ज्येष्ठ भाई की ओर जीभ लपलपाता दौड पडता और एक न एक बहाना बनाकर कुडली फेर दी जाती। फिर ऐसी बात क्या छिपाए छिपती है ? कूर्माचल के कमबख्त ाडी परिवार तो विवाह योग्य कन्याओ के मगल, ज्येष्ठ, अश्लेषा नक्षत्र कठस्थ रखते हैं और अवसर पाते ही अपनी विवाह योग्य कन्याओ की तुरुप लगाने म नही चूकते। इसी बीच, अचानक पिरी को कुछ क्षणो के लिए बृहस्पति की दशा आ गई।

हमारे मकान से लगा मकान था पिरी के पिता का, और उससे नये दुमजिले मकान मे पाडे जी रहत थे। उनका ज्येष्ठ पुत्र राजेश, वर्षों पूव, हाईस्कूल की परीक्षा मे नकल करते पकडे जाने पर लज्जा से गह त्यागकर अदश्य हो गया था। तब का विद्यार्थी, क्या आज के विद्यार्थी सा दु साहसी था जो पकडने वाले गुरुजनो का पेट फाड, परीक्षा भवन म ही उनकी आतें फला देता या कलेजा फाडकर फेफडे ? पकडे जाने पर, तब का सस्कारशील किशोर या तो ताल तलैया मे कूदकर स्वय को दण्ड दे लेता या गृहत्यागी बन, देश विदेश मे अलख जगाए घूमता रहता। धीरे धीरे पन्द्रह वष बीत गए, इसी बीच काशी के प्रसिद्ध तान्त्रिक, पाडेजी के अतिथि बनकर आए। एकदम पहुचे सिद्ध, अखरोट के वक्ष क नीचे धूनी रमा ली और देखत ही देखते, पहाड की धमभीरु सहज विश्वासी भीड ने घेर लिया। कैसे ही विषम प्रश्न पूछो, चट उत्तर दे देत। पाडेजी ने भी गृहत्यागी पुत्र के लिए गुप्त प्रश्न किया उत्तर मिला—"तुम्हारा पुत्र दक्षिण दिशा म जाकर एक जहाज मे बैठा था, जहाज डूब गया, मृत्यु का सकेत स्पष्ट है।" कमकाडी पाडेजी न चटपट कुश का पुतला बनाया और गतिक्रिया कर दी। मा जिस पुत्र का चेहरा भी भूलने लगी थी, उसी क लिए छाती पीट पीट कर ऐसे विलाप करने लगी जैसे लाश अभी आगन म धरी हो। राजेश की *काल्पनिक मृत्यु की तेरहवी के दूसरे ही दिन, गह के दूसरे पुत्र देवेश क लिए,* पिरी की कुडली लेकर पतजी पहुच गए। पिरी को सबने देखा था पर भावी सास को आपत्ति थी। ऐसी रूपवती बहू के सौ नखरे भला वह कम सहेगी

फिर उसकी बहन की तीन तीन रूपवती बहुए उसे सबक सिखा चुकी थी—तीनो बहनोत, रूपवती पत्नियो के गुलाम बनकर रह गए थे।

"बहू के रूप को क्या मैं चाटूगी ?" उसने तुनककर कहा था, "मुझे तो गुण चाहिए गुण !"

पर पाडेजी ने मूर्खा पत्नी को मना लिया, "कैसी बात करती है, मक्खी चूस की एक ही लडकी है, आखिर कितने दिन जिएगा ? सब सम्पत्ति हमारे देबू को मिलेगी"—बस चटपट मगनी हो गई थी।

पर किसी शक्तिशाली कीलक गाडकर पल भर मे अवश बना दिए गए ग्रह ने फिर करवट बदली। विवाह के आठ दिन रह गए थे। पिरी की प्रसन्नता आकाश छू रही थी। छूती भी क्यो नही ? देबू सा सजीला तरुण मुहल्ले टोले म ढूढने पर भी नही मिल सकता था, बचपन से ही वह पिरी को परी-परी कह कर चिढाता था और एक बार जब मुहल्ले के रिश्ते से हम सब पडोस की लड किया उसे भाई दूज का टीका लगाने पहुची तो उसने हसकर कहा था, "सबसे रोली का तिलक लगवा लगा पर इस परी से नही—इसे मैं क्या कभी बहन कह सकता हू !"

"हाय हाय, कैसा बेहया है ये देबूदा। रुक जा, अभी कहती हू चाची से" पिरी बनावटी रोष से कहती बिना तिलक किए ही लौट आई थी। उस दिन से हम नित्य छेडती रहती, 'ए परी, जा न, तेरी ससुराल के दाडिम मे खूब फल आया है। ले आ ना आचल भरकर।"

"और क्या, बुढिया मुझे वही जीता गाड दगी !"

"बुढिया का बेटा तो नही गाडेगा अपनी परी को।"

"इतना मैं तुझे लिखकर दे सकती हू" वह मुझसे कहती और उसकी सदा बहार आखें डबडबा आती, 'बुढिया मुझे कभी बहू नही बनने देगी।"

पर जब एक दिन सुना कि सचमुच ही पिरी की सगाई वहीं हो रही है जहा वह चाहती थी तो मैं प्रसन्नता से उछल पडी और उसी विवाहोत्सव के लिए, परीक्षा से पहले छुट्टी लेकर घर आ गई। आसन्न विवाह तिथि ने पिरी को सचमुच ही परी बना दिया। उसका वैसा रूप, फिर मैंने कभी नहीं देखा। एक तो उसने कभी पहाड की देहरी नहीं लाघी थी, इसी से गालो की पहाडी सेवो की कुमारी लालिमा, आखो की निर्दोष चादनी, स्वच्छ दतपक्ति और स्वस्थ गुदगुदी देह मे कुमायू की वन लक्ष्मी का सरल सौंदय साकार हो उठा था। उधर प्रेम ज्वर सन्निपात की अन्तिम अवस्था म पहुच चुका था, हृदय के उल्लास ने उसे और भी उदार बना दिया था। महाप्रोदाय से वह दायें बायें अपनी प्रसन्नता का सीमित भडार लुटाए दे रही थी।

बात-बात पर हृदय लुभाने वाली हसी, पदचाप से ही मुनिया का तपोभग

उदासीनता से जेब से सिगरेट निकालकर जलाने लगा, 'अब एक ही उपाय है जो तुम्हें आजन्म के अनावश्यक कौमार्य-व्रत से बचा सकता है।" उसका स्वर गम्भीर था, लग रहा था इस बार वह सचमुच ही उसकी हँसी नहीं उड़ा रहा है।

"क्या ?" पिरी शायद दो कदम आगे बढ भी गई होगी, उस चचल किशोरी को मैं खूब जानती थी। आकस्मिक उत्तेजना से उसकी बोटी बोटी फडक उठती थी। "यही कि तुम मुझसे विवाह कर लो" और वह अपनी उसी धृष्ट मुद्रा मे खडा हँसने लगा।

पिरी का गुस्सा हमेशा उसकी नाक पर बैठा रहता था, उसके मर्यादाहीन अविवेकी प्रस्ताव से उसका सर चकरा गया।

"मैंने उसे खींचकर ऐसा तमाचा मारा कि चूडिया टूटकर, दूर तक झन झना गइ, फिर मैं पागलो की तरह सीढिया फाद गई।" पिरी ने मुझे लिखा था। इसके बाद वह उस छत पर कभी नही गई।

धीरे धीरे उसकी सब मौसेरी फुफेरी बहनो के विवाह हो गए। समय बीतने पर सब मा बनी, फिर लडको की मूछें निकल आइ, लडकिया के विवाह हो गए और पिरी की हमजोलिया, प्रौढा बन पान तम्बाकू गुलगुलाती अपने मेदबहुल शरीर पर चर्बी की तहो पर तहें बिछाती पास पडोस म हाथ नचा, आखें मटका वैसी ही निरथक बातो की गदी पोटलिया खोलने लगी, जसी उनकी मा, चाची और ताइया खोला करती थी। किसकी लडकी किसके साथ भाग गई, किसकी बहू ने सास क साथ दुर्व्यवहार किया किस सास ने नई बहू को उसके दहेज का एक लोटा भी नही दिया आदि आदि।

पर पिरी को छूने म, जीवन का प्रौढ दस्यु भी जसे सहमकर दो कदम पीछे हट गया था। वह मेडिकल कालिज से छुट्टियो मे लौटती भी तो अपन ही कमरे म बद रहती। एक बार सध्या को वह अकेली मदिर से लौट रही थी कि उसकी टक्कर भूले बिसरे प्रणयी से हो गई। मान अभिमान के कई रसीले प्रकरणा के पश्चात अधूरे उपाख्यान की नवीन सष्टि हुई। इन्ही दिनो मैं भी पहाडी गई थी।

पिरी से अचानक भेंट हो गई, जाखनदेवी के मदिर मे, हाथ मे धूपदीप लिए वह देवी के सम्मुख नतमुखी खडी थी।

'किसके लिए जला रही है आज यह ?" मैंने हसकर उसके कधे पर हाथ धरा और वह चौंककर मुडी।

मदिर की टूटी सीढिया पर बैठकर, फिर मैंने उसके दु साहसी प्रेमी की एक एक भीष्म प्रतिज्ञा सुनी।

'वह कहता है, विवाह करेगा तो मुझीसे या जीवन भर कुवारा रहेगा। उसक पिता तो पिछल साल नही रहे, तू सुन ही चुकी है, पर बुढिया का जैसा स्वास्थ्य है शायद दो सौ साल की होकर भी नही टलेगी। और वह ससुर

जेठ बहादुर नेपाल मे ठेकेदारी कर रहे हैं। सुना, ठीकरा भी उठाते हैं तो सोना बन जाता है। बुढिया ने बहुत टेसुवे बहाए पर वह भी कहता है—कुवारा ही रहेगा। उसीके लिए तो जलाती हू दीया।" वह हसने लगी थी। उस मदिर मे जलाए गए घृत की महिमा भला कौन नही जानता था।

बहुत पहल, एक प्रणयोन्मत्ता किशोरी ने वहीं दीया जलाया था। जिस घर की कामना हेतु वह प्रदीप लेकर, नित्य सध्या को पहुचती थी उसका एक दिन कही विवाह भी हो गया, पर किशोरी का था देवी पर अगाध विश्वास। वह नियमपूर्वक प्रदीप जलाती रही। एक दिन किसीने शायद छेड भी दिया, अब क्या करेगी दीया जलाकर—देवी तुझपर प्रसन्न नही हुई।

देवी प्रसन्न हुई। जिसे उसने मन ही मन वरा था, वही उसका पति बना। नई बहू तीसरे ही महीने गोलोकवासिनी हो गई थी, दूसरा विवाह हुआ उसी किशोरी से।

'तू किस सौत की मृत्युकामना करने को दीया जला रही है "मैंने पूछा।

'क्यो ?" अबोध शिशु सी आखो मे था अगाध विश्वास, 'मेरी सौत कौन है, तू नही जानती ? मेरा जेठ "

मैं काप गई थी।

"छि छि—ऐसा मत कर पिरी।" मेरे कहने से क्या पिरी रुकती ?

मदिर मे नित्य घी का दीया जलने लगा—फिर भी देवी प्रसन्न नही हुई। दोनो दर्शनीय कुवारे भाइयो की राम लक्ष्मण की सी जोडी, कन्यादायग्रस्त माता पिताओ की छाती पर मूग दलती रही। धीरे-धीरे माताओ की कुठा पिरी के प्रति गहरे आक्रोश म, शतमुखी कुत्सा बन, कुटिल प्रचार करने लगी।

"देखती नही दाया पैर बढाकर चलती है।"

"ठीक कहती हो चाची कलमेरे घरकी गली से होकर, अस्पताल जा रही थी, मेरी कढाई में तेल जल रहा था चट से इसने नाक पर रूमाल धर लिया। मैं कहती हू सारा दोष बुढिया का है, अरे दिन दहाडे जो यह डाक्टरनी उसके बेटे के साथ मुहकाला किए फिर रही है उससे अच्छा यह नहीं है कि इसे बहू बना ले ? चाल ढाल से तो यही लगता है कि कम से कम पाचवा महीना है।"

एक दिन मैंने सुना और सन्न रह गई। क्या पता बचारी पिरी को पता भी न हो कि समाज को उसने किस हद तक अपना घातक शत्रु बना लिया है।

मैंने जब उससे यह सब कही तो वह हसने लगी, "मूर्ख औरतें—इतना भी नही समझती ? मैं परिवार नियोजन केन्द्र म काम करती हू—जो जिरह बख्तर इन्ह पहना चुकी हू वह क्या स्वय नही पहन सकती ?

तब क्या सचमुच पिरी उस कायर व्यक्ति की मिस्ट्रेस बनकर रहन लगी थी ?

"यू आर शेमलेस पिरी," मैंने उसे डपट दिया था, "जब उस व्यक्ति म

इतना भी साहस नही है कि वह तुझसे विवाह कर ले, तब वह जिस ज़िले मे तेरी बदली होती है वही क्यो भागता है, क्यो तुझे बदनाम करता फिरता है ?"

'इसलिए कि वह मेरे बिना जी नही सकता और अपनी खूसट मा से बेहद डरता है। कहती है, उसने यदि मुझसे विवाह किया तो वह ताल मे कूद पड़ेगी, पर हम दोनो के मिलने पर अब विधाता भी प्रतिबध नही लगा सकता समझी ?"

यही नास्तिक पिरी के स्वभाव का सबसे बडा दुर्गुण था, बात बात पर विधाता को दी गई चुनौती और स्वय अपने अहकारी स्वभाव पर अटूट आस्था। इसी बीच पिरी का तबादला हमीरपुर को हो गया, उधर उसके प्रेमी मुसिफ देवेश पाडे ने भी बडी चेष्टा से अपनी बदली वही करवा ली। इस बार पुत्र को ढूँढो करने मा नही जा पाई। बडा पुत्र सनिपात ज्वर से ग्रस्त हो, नेपाल से स्वदश आ गया था।

'लगता है इस बार मेरा ज्येष्ठा नक्षत्र रग पकड रहा है," पिरी ने मुझे उस बार लिखा था, "लाख हो, फेरे फिरने से ही क्या सप्तपदी सपूण होती है ? चाहने पर, मैं अब अपने विवाह की रजत जय ती मना सकती हू। सयम के चाबुक से अपन को न साधा होता तो शायद मैं भी तेरी तरह दो कयादान निबटा चुकी होती। जेठ बहादुर की अवस्था बहुत सुविधा की नही है, सनिपात का चौथा हफ्ता ही सबसे खतरनाक होता है और उसीमे झूल रहे है जेठ जी।"

मैंने उसे डपटकर चिट्ठी लिखी थी, 'ऐसी चिट्ठिया मुझे मत लिखा कर, भगवान से तो डर।"

खुले काड मे उस नास्तिक का एक पक्ति का नगा स न्देश आया था—"तेरे भगवान की ऐसी-तैसी।"

अब तक नादान बालिका के से प्रलाप को सुनी अनसुनी करने वाला धीरमति विधाता भी शायद उस बार बौखला गया।

उसी दैवी पादप्रहार से लडखडाकर पिरी ऐसी गिरी, कि विमूढ विपन्न बनी, किसी अनजान धरातल मे धसती सहसा अदश्य हो गई।

बडे भाई को देखने गया छोटा भाई, जब लौटा तो सनिपात का विषधर उस भी डस चुका था।

पिरी की सेवा, सन्निपात की आधुनिकतम सजीवनी, जिससे आजकल एक साधारण कम्पाउडर भी इस विषम ज्वर को जीत लेता है उसे नही बचा सकी।

उसकी मृत्यु के पश्चात पिरी कहा गई कब गई—कोई भी नही जान पाया। लम्बी छुट्टी की एक अरजी देकर वह जसे एक ही रात म पर उगाकर किसी अनजान दिशा मे उडती अदश्य हो गई थी।

गत वष अचानक धूमकेतु-सी ही वह कूर्मांचल के गगागार म एक बार

फिर चमक उठी । सफेद साड़ी रिक्त कलाइयां, बिंदीविहीन वैधव्य दग्ध ललाट और वेदना विधुर सूखा चेहरा लिए, वह अपने श्वसुर गृह की सांकल खटखटाने, बिना किसी पूर्व सूचना के ही पहुंच गई थी ।

उसी श्वसुर गृह में, जहां कल्पना लोक की पालकी उस नवोढ़ा को गुलेनारी रंग वाले दुपट्टे से ढांप ढूप न जाने कितनी बार पहुंचा आई थी जहां उस किशोरी के कौमार्यावस्था के सहस्र दिवास्वप्न, एक साथ ही, हाथ से छूट गई ट्रे पर धरे कांच के पात्रों की ही भांति टूटकर चकनाचूर हो गए थे, जहां कल्पना ने उसे नवेली बहू बनाकर खड़ा किया था, वहां ठोस यथार्थ के धरातल पर, वह खड़ी थी विधवा के वेश में । जो विवाह न होने पर भी सधवा थी वह आज अग्नि साक्षी न होने पर भी विधवा थी । उसने फिर सांकल खटखटाई ।

द्वार सास ने नहीं खोला । खोला उसके बड़े पुत्र ने । पल भर को वह चीख ही पड़ी थी । *उसके सम्मुख जैसे सन्निपात ज्वर से रोगमुक्त हो उसका स्वस्थ* प्रेमी ही खड़ा था—वैसी ही स्निग्धतरल बादामी आंखें, और रामलीला की सीता की सुकुमार हंसी । शायद मूंछें मुंडा ली थीं, उसीसे शक्ल छोटे भाई से इतनी मिलने लगी थी ।

"आइए," उसने कहा और सहमी पिरी उसके पीछे पीछे चली गई थी । पिरी ने डरते डरते ही पूछा था, "आपकी मां क्या यहीं होंगी ? आपके भाई का सामान " और उसका गला रुंध गया था ! बंद खिड़की बंद द्वार भयावह अंधकारपूर्ण विचित्र सीलन भरा कमरा । उसके कांपते कंठस्वर को संयत होने का समय देने ही, शायद वह बड़ी समझदारी से अपने भीतर के कमरे में चला गया । थोड़ी ही देर में लौटा तो हाथ में गर्म चाय का प्याला था "लीजिए, आप पहले चाय पीजिए । डाक्टरनियां तो सुना बहुत चाय पीती हैं—क्यों है ना ?" वह फिर हंसा—और इस बार पिरी का चेहरा एकदम फक पड़ गया, हाथ कांपकर चाय, शायद कुछ छलक भी गई । कहीं इसके छोटे भाई का प्रेत ही तो परकाय प्रवेश कर, उसे छलने नहीं आ गया ?

एकदम वैसी ही हंसी, और पतली नाक पर पड़ती हूबहू वैसी ही झुर्रियां !

"अपनी मां को बुला सकेंगे क्या ? मुझे इसी बस से नैनीताल जाना है" पिरी ने अधैर्य से अपनी घड़ी देखी, "आपके भाई की पासबुक, अंगूठी और बक्सा मेरे पास था, सोचा पहाड़ जा रही हूं तो अपने हाथ से आपकी मां को सौंपूंगी ।' गला पल भर को फिर रुंध गया पर दूसरे ही क्षण बड़ी स्वाभाविकता से कंठस्वर वैसा ही रोबीला बना लिया, जिसमें वह मृतप्राय रोगिणियों के मूर्ख अभिभावकों को समय रहते उन्हें अस्पताल न लाने के लिए डांटा करती थी, ' मेरे पास फिजूल का समय नहीं ।—उन्हें जरा जल्दी बुला देंगे क्या ?'

"बुला तो अवश्य देता," इस बार उसके प्रेमी का पठान सा ऊंचा अगला

है ?"

"तू क्या सचमुच इसे पहनेगी ?" उसने पूछा और पल भर को मुझे लगा कि उसकी ईर्ष्याकातर लोलुप दृष्टि मे याचना मुखर हो उठी है ?

"और नही तो क्या ! वेश्या के गले का मूगा क्या सहज ही म जुटता है ?"

मैंने पुडिया म बद मूगा, कलमदान मे सहेज दिया।

तीसरे दिन पिरी चली गई। उसी दिन घर का सुनार आया। अपने मगल सूत्र के बीच मूगा गुथवाने, मैंने कलमदान खोला तो कलेजा धक स रह गया। पुडिया के बीच से मूगा जादुई बजरबटटू सा अदृश्य हो चुका था।

पल भर मे, मेरे अविवेकी चित्त ने चट से चुगली खाई—वही ले गई है वेश्या का मूगा क्या सहज म जुटता है ?

छि ! कैसी नीच थी मैं ! जो तीन दिन रहकर, मुझे तीन सौ का समान दे गई थी वह भला कीडे का घुना काले पड गए घुने दात सा मलिन मूगा चुराएगी ?

और भला, अब किस सौभाग्य की आकाक्षा हो सकती थी उसे ?

पर अतरात्मा भी पुलिस के कुत्ते की भाति अपराधी को सूघकर कभी ठीक ही पकडती है।

अपनी आखो से ही तो मूगे की महिमा देख आई हू। शायद इसीलिए वह नैनीताल आकर भी मुझसे मिलने नही आई—जिस मूगे के सूत्र स उसने अचानक नवीन सौभाग्य दस्यु को पकडा था, उसे मैं पहचानने पर, कही खुलवा न लू ! मुझ एक ही शका रह रहकर चितातुर बना उठती है—पूर्वस्वामिनी के कठहार का यह मूगा कही पिरी के सीमत सिदूर को भी वारवनिता के सिंदूर सा ही क्षणस्थायी न बना दे !

शपथ

पीछे से ग्राकर, उसने धीरे से मेरे कधे पर हाथ धरा ग्रौर मैं चौंककर मुडी । एक पल के लिए मैं उसे देखती ही रही । मैं कुछ कहती, इससे पहले ही वह हसी, "वाह जी वाह, हमने तो तुम्हारी पीठ देखकर ही पहचान लिया ग्रौर तुम हमारा चेहरा देखकर भी नही पहचान पाइ ?"

"ग्रोह शुभ्रा, पर कितनी बदल गई हो तुम !" मैंने कहा ।

वह क्या बीस वप पूव की शुभ्रा थी ! तब का गोल गोल ग्रानदी चेहरा लबोतरा होकर ग्रौर भी ग्राकपक बन गया था । सुघड जूडे म मडित घने केश पाश की गरिमा क्षीण होने से ही सभवत उन्ह काट छाटकर यत्न से टीज़ कर दिया गया था । उन ग्रधरा की स्वाभाविक लालिमा को, मैंने बहुत निकट से देखा था । उन्हे निरतर रगकर ही क्या स्वामिनी ने ऐसा धूमिल बना दिया था ! सूखे पपडी पडे बलात ग्रधरो पर ग्रप्रस न स्मित की रेखा सहसा उज्ज्वल हो उठी ।

"यहा बडी भीड है । चल न, कार म चलकर बैठें ।" ग्रौर मै कुछ कहती इससे पूव वह मुझे ग्रनक कारो की पक्ति मे भी विशिष्ट रूप से चमकती ग्रपनी काली लबी गाडी मे खीच ले गई ।

"मैंने कभी सोचा भी नही था कि तू यहा मिल जाएगी !" कार की हल्की रोशनी जलाकर वह मुझसे सट गई ।

ग्रपनी क्षीण कटि के कौमाय को, वह निश्चय ही मुटठी मे बाधकर सेंतती ग्राई थी, पर फिगर को जकडे रहने पर भी सस्कृति, जैसे उसकी पकड से छूट कर बहुत दूर छिटक गइ थी । पट्टी से ब्लाउज पर, बडी उदासीनता से पडा उसकी पारदर्शी साडी का ग्राचल, ग्रगुलिया पर हीरे की वतुलाकार जगमगाती ग्रगूठी से उज्ज्वल हो उठी निकोटीन के इतिहास की निलज्ज कालिमा, ग्रौर ग्राखा के नीचे रात्रिजागरण से उभरी काली भाइ, जिसे उसका मस्करा कौशल भी नही छिपा सका था ।

"ग्राखिरी बार हम कब मिले थ ?' उसने पूछा ।

"बीस वप पूव ।" मैंने कहा, "जब तूने हमारी वाडन को ग्रपने ग्रपूव ग्रभिनय से पसीना-पसीना कर दिया था "

वह जोर से हसी ग्रौर उसी परिचित हास्यधारा ने हम दोनो के भूले बिसर

कैशोय को खीचकर एक बार फिर सामने खड़ा कर दिया।

शुभ्रा हमारे होस्टल की सबसे मानदी लड़की थी। उसके परिहास रसिक चित्त ने उस पूर आश्रम का प्रेज बना दिया था। ऐसे एसे मजाक करेगी कि सब हसत हसत दुहरे हो जाएगे पर स्वय ऐसी सूरत राए बैठ जाएगी, जैसे कुछ जानती ही न हो।

उस पहली अप्रैल को पूरे छात्रावास म हवा की भाति यह समाचार फल गया था कि सुदर शुभ्रा को गदनतोड ज्वर हो गया है। दो ही दिन पूव इसी विषम ज्वर न छात्रावास की एक प्रतिभाशालिनी छात्रा के प्राण लिए थे। प्राणातक सिरदद म इधर उधर सिर पटकती जूथी दी ही की भाति शुभ्रा भी तडपती, सिर फॅरती, दम तोडने लगी थी। उसके उस परिहास का रहस्य सीमित था, कवल हम दोनो तक। कैसी शाय, ज मजात अभिनत्री थी वह। जब हम शात जूथी दी की मृत्युशय्या के पास विवश खडी सिसक रही थी तब क्या वह अभागो तीन दिन बाद के अभिनय का मूक रिहसल कठस्य कर रही होगी! जब वाडन उसके घर का तार करन भागी, तभी वह हसती हसती उठ बैठी थी।

दूसरे ही दिन मैं अपन पिता की बीमारी का तार पाकर चली गई और फिर कभी उससे नही मिल पाई। बीच-बीच मे वह पत्र लिखती रहती और उसके पत्रो की भी उसीकी भाति बोटी बोटी फडकती थी। उसीके एक पत्र ने मुझे उसके विवाह का समाचार भी दिया था। उसके समद्ध प्रतिवशी परिवार की बडी बहू कालिदी ने ही विचित्र परिस्थितिया म उसे अपने उस छोटे देवर के लिए पसद कर लिया था, जिसके लिए बहुत बड बडे परिवारा से रिश्त चल आ रहे थे।

"अप्पा साहब की हवेली के अमरूदा की प्रसिद्धि दूर दूर तक थी" उसने लिखा था, किंतु उस बगिया के अमरूदो से मीठा उस गह का छोटा पुत्र है, यह मैं खूब अच्छी तरह जानती थी, पर जिन अगूरो का विवश हो बाद मे खट्टा कहना पडे उनपर लपकने की मूखता भला मैं कभी क्यो करती? मैं जानती थी कि मैं एक अध्यापक की पुत्री हू। अप्पा साहब की बडी बहू कालिदी थी स्वय एक प्रतिष्ठित परिवार की क या और मझली बहू के पिता थे—चीफ जस्टिस। तब तू ही बता मेरी क्या बिसात थी जो उस गह की बहू बनने के सपने देखती? मैं तुझे विश्वास दिलाती हू कि मैं केवल अमरूद चुराने ही गई थी उस गह के पुत्र को चुराने की बदनीयत से नही। मैं जानती थी कि सास *श्वसुरविहीन उस विराट साम्राज्य की एकछत्र स्वामिनी कालिदी भाभी अत्यत* उग्र स्वभाव की हैं और उन अलभ्य किसी किशोरी के से गुलाबी गालो वाले

इलाहाबादी अमरूदो का एक एक बेटा उ होके हाथो सवरा सजा है। यही नही, एक एक दाने पर उनकी सील लगी रहती है। और पकने पर अपने ही ऊचे तबके के इष्टमित्रो के यहा वे गिन गिनकर डालिया भेजती हैं। वह भी ऐसे, जैसे अमरूद नही, अशर्फिया लुट रही हा! सोमवार को वे नित्य आठ बजे, अपनी देवरानी मालिनी को लेकर गह के इष्ट शिव के पूजन को जाती है, यह मैं जानती थी। माली खाट पर बेसुध पडा सो रहा था, यह भी मैंने अपनी खिडकी से देख लिया था। लाल गुलाबी फलो से लदे पड की डाल मैंने लपककर खीची और मन भरके अमरूद खाए। आधा अमरूद कुतरती मैं अपने पैर मे चुभ गए काटे को निकाल ही रही थी कि कालिन्दी भाभी अपने पति दोनों देवर और देवरानी के साथ कार से उतर सीधी मेरे सामने खडी हो गइ।

"'अब समझ मे आया कि दस नबर के पेड के सत्रह दाने उस दिन कौन ले गया! यही बाबूराव मास्टर की भुखमरी कगली रही होगी!'

"'मेरे जी मे आया मैं उसी क्षण उस अहकारी महिला के पट्टाबर परिधाना को चीरकर धज्जिया उडा दू। यह ठीक था कि मेरे पिता अध्यापक थे किन्तु उन तीन सुदशन पुरुषो के सम्मुख मेरे दरिद्र कुल की ऐसी निलज्ज व्याख्या करने का उन्हे क्या अधिकार था भला!

'बता छोकरी तू अमरूद चुराने यहा आई क्यो?' कालिदी भाभी तनकर खडी हो गइ।

"क्योकि ऐसे मीठे अमरूद और किसीकी बगिया म नही हैं।' मैंने कहा और उनके रोबदार तमतमाए चेहरे को बडी अवज्ञा की दृष्टि से देखती मैं हसने लगी।

"मेरे इस अभद्र प्रहार से बेचारी तिलमिला गइ। मुझे मारने को ही शायद उनकी पुष्ट भुजा हवा मे उठी थी कि पीछे खडे उनके पति ने अपनी रुष्टा चामुडा को थाम लिया, 'आहा जाने भी दो कालिदी इतने अमरूद तो लगे है, एक आध खा भी लिया तो कौन सा अधेर हो गया!' मैं चुपचाप खिसक आई, पर पता नही कालिदी भाभी ने कैसा शाप दिया कि उसी रात को मुझे तेज ज्वर आ गया। पाचवें दिन भी जब ज्वर नही उतरा तो पिताजी मुझ मौसी क पास बरेली पहुचा आए। वही मुझे एक दिन कालिदी भाभी का मधुर प्रस्ताव दूसरे सनिपात ज्वर की बेहोशी मे खीच ले गया। इसी अठारह अप्रैल को मेरा विवाह है तू आएगी न?"

पर शुभ्रा के विवाह मे मैं जा नही सकी। धीरे धीरे उसके पत्र भी आने बद हो गए। श्वसुर गह की प्रभुता के मद ने ही शायद उसे विस्मृति के अधकारपूण कक्ष म मूद दिया था।

और अचानक वह इतने वर्षों बाद यहां मिल गई।

"क्यों शुभ्रा" मैंने पूछा, "अब भी पहली अप्रैल को अपने विलक्षण परिहास रसिक चित्त का परिचय ससुराल वालों को देती है क्या ?"

एकाएक उसका चेहरा फक पड़ गया। सकपकाकर उसने इधर-उधर देखा फिर जोर से हाथ पकड़ लिया। उन सुन्दर आयत नयनों की सजल स्निग्धता, सहसा दो बूंद बन मेरे हाथों को भिगो गई।

'सबसे बड़ा मजाक मैं कर चुकी हूं। अच्छा हुआ—तू मिल गई। जल्दी जल्दी कह ही डालूं अच्युत आते होंगे और साथ में वही होंगी। फिर क्या वह मुझे बोलने देंगी! ऐसे मेरा मुंह ढांपकर रख देंगी।" पसीने से तर, कांपती सफेद हथेली से शुभ्रा ने बड़े जोर से मेरा मुंह बंद कर दिया और मेरा दम सा घुट गया।

"विवाह होते ही मैं समझ गई कि कालिंदी भाभी मुझे जानबूझकर ही मध्यमवर्गीय परिवार से इसलिए लाई थीं जिससे मैं जीवन भर उनका रोब मानती रहूं। मातहीन देवर को उन्होंने पुत्रवत् पाला था। कहीं ऊंचे गृह की कन्या लाई तो मझले देवर की ही भांति अपनी बहू के अंगूठे तले दबा मंद बना वह भी न हाथ से निकल जाए! प्रत्येक वर्ष दो माह की छुट्टियां हम उन्हीं के साथ मनानी होतीं। यही नहीं उनका आदेश अच्युत के लिए कानून की अमिट रेखा थी। सन्तानहीना कालिंदी भाभी का स्वभाव दिन प्रतिदिन उग्र होता जा रहा था। उनका प्रत्येक वाक्य मुझे बार बार स्मरण दिलाता रहता कि आज जो मैं इतने बड़े अफसर की पत्नी हूं उसका श्रेय मेरे भाग्य को नहीं, स्वयं उन्हींके औदार्य को है।

"दो गज की दूरी पर मायका था किन्तु मुझे दस वर्ष के पुत्र की मां बनने पर भी, इतनी स्वतन्त्रता नहीं थी कि अपने अंधे वृद्ध विधुर पिता के पास एक रात भी बिता लूं। रात रात तक उनकी ब्रिजलीला चलती और मुझे कई बार कॉफी बनानी पड़ती। कभी कभी तो सबकी उपस्थिति में वे मुझे बुरी तरह अपमानित कर देतीं 'इतने साल हो गए शुभ्रा, पर ढंग से कांटा चम्मच पकड़ना भी नहीं सीख पाई।'

"मैं मन ही मन उबल उठती। अपनी संपत्ति का लाख घमंड करें कालिंदी भाभी घर की बहुओं में मेरा ही पलड़ा सबसे भारी था। भावी युवक की स्वाभाविकता से एक दिन मेरा ही पुत्र, अप्पा साहब की संपत्ति को खींच लेगा। मालिनी भाभी के एक ही पुत्री थी, उसे भी पोलियो ने पंगु बना दिया था। वैसे इसी बीच कालिंदी भाभी एक और मूर्खता कर बैठी थीं। जेठजी के एक साले जिलाधीश थे। उन्होंने किसी अनाथालय में, एक सुन्दरी अनाथ बालिका देखकर कालिंदी भाभी को फोन कर दिया था 'तुमने कभी कहा था

कि तुम किसी अनाथ बालिका को गोद लेना चाहती हो। क्या इस बच्ची को लेना चाहोगी ?'

'स्वय जठजी ने उस प्रस्ताव का घोर विरोध किया था—पता नही, किसकी लडकी है! विवाह के समय पचास समस्याए खडी होगी, फिर पराई सतान बटोरने की तुम्हे क्या पडी है ? क्या शुभ्रा का बेटा, मालिनी की बेटी हमारी सतान नही है ?—किंतु कालिदी भाभी का बढता रक्तचाप ही उनका ब्रह्मास्त्र था। उसीके प्रयोग से उन्होने अपनी उस बचकानी जिद को भी पूरा कर लिया।

"लडकी वास्तव म सुदर थी। भूरे बाल, बहुत गोरा रग और मछली सी तिरछी आखें। कुछ दिनो तक वह अपने परिचित परिवेश के पश्चात् हमारे गृह के वैभव को देखकर सहम सी गई थी, पर फिर उसके स्वभाव की चचलता स्पष्ट हो उठी। चार ही दिन म कालिदी भाभी न उसपर जादू की छडी सी फेर दी थी। नये ढग से कटे केश, एक से एक सुदर फ्राक और शिफ्ट मे वह अब पहचानी ही नही जाती थी।

'एक दिन अच्युत ने कालिदी भाभी को छेड दिया, 'एकदम ऐंग्लो इडियन लगती है तुम्हारी इला। देख लेना भाभी, बडी होने पर, एक दिन अप्पा साहब की सारी सपत्ति लकर किसी दागले इजन ड्राइवर के साथ भाग जाएगी।'

" 'भागेगी क्यो' गभीर स्वर मे भाभी ने कहा था, 'घर का सोना घर ही मे रहेगा अच्युत, इसे तुम्हारी बहू बनान तो लाई हू।'

' 'छि भाभी,' मैंने तडपकर कहा था, 'ऐसा रिश्ता सुनन मे भी पाप लगता है, चचेरे भाई बहन का विवाह होता है कही!'

" कैस भाई बहन ? मूख कही की!" कालिदी भाभी बोली, 'इसीलिए तो किसी अबोध लडकी को मैंने गोद नही लिया। वह खूब समझती है कि इस हवेली से, उसके रक्त मास का कोई रिश्ता नहीं है।

'फिर तो, वे जस हाथ धोकर मेरे पीछे पड गइ। कभी अतुल से कहती, 'जा, अपनी बहू से खेल।' कभी कहती, 'शुभ्रा, अपनी बहू को देख जरा! ठीक तेरी ही तरह अमरूद चुराकर कुतर रही है।'

' मैं मन ही मन बौखला उठती। इला अभी से ही इतनी सुदर थी, फिर भविष्य की उस सुलक्षणा स्वयदूती के एक एक लक्षण मुझे सहमाने लगे थे। बचपन स ही ऐसी पकी बातें सुनकर क्या यह सभव नही था कि पाल के पकाए गए पपीते की भाति मेरा अबोध पुत्र भी अकाल परिपक्व हो उठे ? अतुल को अपनी सगी चचेरी बहन से कोई लगाव नही था, किंतु इला के बिना उसका एक पल भी जैसे सार्थक नही रहता। एक तो, वह दुसाहसी दस्युकन्या, पेड पर जगली बिल्ली की ही फुर्ती से चढ सकती थी। उसके मित्रा के साथ

क्रिकेट खेलती थी। लडको के प्रत्येक खेल म उसकी रुचि थी और लडकियो के खेल से थी घोर अरुचि। व्हील चेयर पर अवश बैठी मालिनी भाभी की बेटी अजना, अपनी सुदर गुडिया का उत्कोच देने पर भी जिसे अपनी सहेली नही बना पाई थी, वह मेरे बेटे की अतरग बाल्यसहचरी बन उठी थी।

"एक दिन कालिदी भाभी ने खाने की मेज पर मुझे फिर छेड दिया, 'छोटी, कभी कभी तो इला की शक्ल तुझमे इतनी मिलती है कि लगता है, तेरी ही बिटिया है।' इस बार व झूठ नही बोल रही थी। उस अज्ञात कुल की अवैध बालिका के चेहरे की मेरे चेहरे से सचमुच आश्चयजनक समानता थी। अपने बचपन की तस्वीरो स उसका मिलान कर मैं स्वय दग रह गई थी।

' उस इक्तीस माच को प्रकृति भी मेरी परिहास योजना म, स्वय ही रस ले उठी। मुझे कालिदी भाभी की व्यग्योक्ति उसी क्षण डक्सा उठी। क्यो न अनुकूल परिस्थितियो का लाभ उठाकर, उनका मत्सर बाण उ ही की ओर मोड दू ! फिर उसी दिन मालिनी भाभी भी मुझे जोश दिला गई थी—क्यो री शुभ्रा, पिछली पहली अप्रैल को हम तो खूब रुला चुकी है। इस बार बडी भाभी को रुला द तो हम भी जानें।"

"पिछली पहली अप्रैल को मैंने मालिनी भाभी की मा की बीमारी का झूठा तार भेज, उन्ह बिस्तर बधवा स्टशन भी भेज दिया था। कालिदी भाभी ने मुझे बाद मे चीरकर धर दिया था, 'यह भी कैसा मजाक है छोटी !'

' पर दोष मेरा नही था। रूप और वैभव के गव म फूली मालिनी भाभी, इधर गैस के गुब्बारे सी पकड म ही नही आती थी। एक दिन बोली थी, 'हमे कभी कोई बुद्धू नही बना सकता। इतनी पहली अप्रैलें आई और गइ, मजाल है जो किसीका कधे पर भी हाथ धरने दिया हो हमने।'

"बस तीसरे ही दिन मैंने उनके कधे पर हाथ ही नही धरे उन्ह झकझोर भी दिया। इसीसे जब उन्होने मुझे दुबारा ललकारा, तो मैंने हसकर कहा, 'अच्छा भाभी, इस बार भी मुझे तुम्हारी चुनौती स्वीकार है।' और उसी क्षण, मेरे कौतूहलप्रिय मस्तिष्क म मेरी कुटिल याजना, बिजली बनकर कौंध गई। वर्षों से सचित हृदय की अव्यक्त घुटन प्रतिशोध लेने परिहास की बैसाखिया टेकती खडी हो गई।

"पहली अप्रैल की वह सुबह किसी किशोरी के अक्षत कौमार्योज्ज्वल स्मित सी ही स्निग्ध थी। सोमवार को भाभी हम दोनो देवरानियो के साथ हवेली के शिवालय म जाती थीं। फिर उस दिन पार्थिव पूजन था। नहा धोकर आठ बजे तैयार रहने का आदेश हम मिल चुका था।

"कभी हमारे श्वसुर के अतरग मित्र, स्वय जगद्गुरु ने उस शिवलिंग की स्थापना की थी। उस शिवलिंग की महिमा का इतिहास भी विशद था। कैसे

उसके स्थापित होते ही, अप्पा साहब को सटटे म अप्रत्याशित लाभ हुआ था, और गह के दो दो पुत्र एकसाथ सिविल सर्विस म निकल आए थे, यह सब मैं सुन चुकी थी। गृहकलह के छोटे मोटे मुकदमे भी बम भोले के उस अपूव न्याया लय मे ही निबटाए जाते। शिवालय म ली गई झूठी शपथ तत्काल उस उग्र देवता का अभिशाप बनकर, अभियुक्त के सिर पर मत्त ताडव कर उठती।

" 'कालिंदी भाभी, आज मैं आपके साथ अकेली ही चलूगी।' मैंने कहा।

" 'क्या ?' भाभी गरजी।

" 'मुझे आपसे एकान्त म कुछ कहना है ' मैंने कहा।

" 'कौन सी ऐसी बात है, जो तुम मालिनी के सामन नही कह सकती ! वशाख का पहला सोमवार है, उसे भी चलना होगा।'

" 'नही भाभी,' अपन स्वर की दृढता से मैं स्वय ही चौंक उठी, 'वैशाख का पहला सोमवार है, इसीस चाहती हू कि आज की पुण्य तिथि मे, आपकी और भोलानाथ की पावन उपस्थिति मे, मैं अपना पाप स्वीकार कर लू।' मेरे अस्वा भाविक रुखे कठस्वर की नम्रता ने भाभी को शायद उलझन मे डाल दिया।

" 'मालिनी,' उन्होने मालिनी भाभी को बुलाकर कहा आज तुम घर पर ही रहो। पार्थिव पूजन मे शायद कुछ देर लगेगी। सोचती हू एक आवत्ति रुद्रि पाठ की भी करवा लू इतनी देर तक तुम्हारी लडकी का अकेली रहना ठीक नही। मैं प्रसाद आरती के लिए तुम्ह बुलवा लूगी।'

" मालिनी भाभी ने आश्चय से मुझे देखा और मेरी मूक दृष्टि की कौतुक-पूण चावनी स शायद समझ भी गइ कि परिहास रगमच पर मेरे प्रहसन नाटक के अदृश्य सूत्रधार नटी अवतरित हो चुके हैं।

" शिवालय के शीतल फश पर तीन कुशासन बिछाकर पुजारी ब्रह्मदव हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे।

" 'अरे मझली बहूजी नही आइ ?' उन्होन पूछा।

" 'नही, उसे घर का काम सौंप आई हू। आरती के समय बुला लूगी।' भाभी बोली।

विधि विधान से हमने पूजन किया। गोबर, मिट्टी और चावल के ग्यारह सौ नन्हे शिवलिंगो को दुग्ध धवल धार से सिक्त कर, धरा पर लोट लोट कालिदी भाभी क्या माग रही है यह मैं जान गई। न जान कितनी व्यथ औष धिया, शल्यक्रिया, गडे तावीजो से लदा उनका फलहीन प्रौढ तरुवर सूखी और मुरझाई पीली पत्तियो के साथ साथ स्वय भी सूखने लगा था, किंतु अपनी वयस के पतालीसवें वष म भी उन्होने फल की आशा नही त्यागी थी। आरती के लिए मालिनी भी आकर न जाने कब हमारे पीछे बैठ गई थी। आरती हुई। पडितजी न अभिषेक की शीतल बूदो से हमे भिगोया, फिर ओठो से विचित्र

ध्वनि सगीत प्रस्तुत कर पूजन के लिए आवाहन कर, निमन्त्रित किए शिवजी को विदा दी, तो भाभी बोली, 'पडितजी, आप मझली के साथ हवेली चल भोजन पाए। हम दोनो थोडी देर मे स्वय ही एक आवत्तिपाठ कर आ जाएगी।'

' मालिनी भाभी न जोर से मुझे चिकोटी भरी, जैसे एक आवत्ति पाठ की मिथ्या घोषणा के पीछे छिपा रहस्य समझ गई हो ! चलते चलते भाभी की नजर बचा मेरे कान के पास आकर फुसफुसा भी गईं, विश यू बेस्ट आफ लक।'

"उन दोनो के जाते ही कालिदी भाभा मेरी ओर मुडी 'क्यो, क्या कहना है तुझे छोटी ?' कुछ पला के लिए मैं हवा मे हिलती दीपशिखा को देखती ही रही। अगरबत्ती की सुगधित अवस न धूम्र रेखा के बीच कैसा दिव्य सन्नाटा था ! भव्य शिवलिंग पर लगा गारोचन अगरु कुकुम का तिलक और इधर उधर बिखरे शिवनामाकित हरे बिल्वपत्र ! मुझे सहसा अपनी अल्पज्ञता डक दे उठी। ऐसे पवित्र देवालय म क्या अपना ओछा परिहास कर पाऊगी ! जी मे आया हसकर सब कुछ उन्ह बतला दू। पर दूसरे ही क्षण अपनी गर्वीली मझली जिठानी की चुनौती का स्मरण हो आया और मैं फिर तन गई।

" आपसे जो मैंने भाई बहन के रिश्ते की बात कही थी, वह एक दम सच है भाभी ' मैंने कहा।

" कैसे सच हो सकती है छोटी ! तू जानती है कि दोना म रक्त मास का कोई भी रिश्ता नही है ' उनका स्वर मदिर के दमामे सा गूज गया।

" 'वही कहने तो यहा आई हू भाभी। इला मेरी बटी है।'

' कालिदी भाभी न चौककर मुझे देखा, 'क्या तेरा दिमाग फिर गया है छोटी !'

" ठीक कह रही हू भाभी आपका याद होगा विवाह के सात माह पूव मैं अचानक मौसी के पास बरेली चली गई थी। फिर वही एक अधेरे बद कमरे म मैंने इला के जन्म की प्रतीक्षा की थी। ईश्वर की कृपा स समय से पूव ही इसके जन्म ने मुझे मुक्ति दे दी। आपको याद होगा, मेरा घूघट उठाते ही आपन कहा था—अरे तरा चेहरा इतना पीला कस पड गया !

' ओफ, कितना बडा झूठ बोल गई थी मैं ! परिस्थितिया को मैंने किस अपूव छल बल से तोड मरोड लिया था। फिर जैसे कोई चतुर दस्यु लोहे की मोटी मोटी छडो को तोड मरोड भीतर घुसपठ कर लेता है, वसे ही मैंने सौ सौ दलीलें पाकर भी कभी आश्वस्त न होनेवाल भाभी के शक्की स्वभाव की अगला को लपककर खोल लिया। विवाह से पूव सन्निपात ज्वर का आभास पाते ही पिताजी ने मुझे मौसी के पास बरेली भेजा अवश्य था, किन्तु मेरी उस यात्रा के पीछे किसी कलक की कालिमा नही थी।

" मौसी मिशन अस्पताल में डाक्टरनी थी और मेरे पीले चेहरे के पीलेपन में, कुछ मामी भाभियों द्वारा पोती गई हल्दी का कला कौशल था, कुछ सन्निपातजन्य रक्तहीनता।

" 'बेशरम ?' भाभी बोली। उनका रक्तचाप उनके गोरे चेहरे पर अबीर बनकर फैल गया, 'उसी आवारा से शादी क्यों नहीं कर ली तब ? इस हवेली में आई किस दुस्साहस से ?'

" 'क्योंकि ' कैकेयी को मंत्रणा देती कुब्जा मंथरा ही जैसे उछलकर मेरे जिह्वाग्र पर बैठ गई, 'मैं उससे विवाह भी करती, तो इसी हवेली में आना पड़ता फिर मैं उससे विवाह कर भी नहीं सकती थी।'

" 'क्यों ?' भाभी के प्रश्न की हिस्टीरिकल गूंज से मंदिर का घंटा भी हिल गया।

' 'क्योंकि उसका विवाह हो चुका था। उनके प्रश्न के तीव्र स्वर की मीड़ को, मेरे उत्तर का कोमल गांधार इस बार पागल बना गया।

" किसी दुर्दांत बालक द्वारा चिढ़ाई गई कोकिल के से खीझे स्वर की कुहू इस बार तीव्रतम हो उठी।

" किससे ?' उन्होंने सांस रोककर पूछा।

" 'आपसे,' कहकर मैंने आंखें मूंद लीं। उस सफेद पड़ गए रोबदार चेहरे की क्षणिक दीनता देखने का मेरा दुःसाहस स्वयं ही दप् से बुझ गया।

'जब आंखें खुलीं तो कालिंदी भाभी पागलों की भांति शून्य दृष्टि से मुझे घूर रही थीं। मेरे प्रति जेठजी का अनोखा लाड़, विवाह से पूर्व मुझे बचाने को थामी गई भाभी की भुजा, छुट्टियां बढ़ाने का दुलार भरा आग्रह, और आज अचानक उनका जघन्य बन गया अपराध, मेरे अतुल के प्रति उनका अनन्य प्रेम, ये सब तथ्य, मेरे पक्ष को सबल बनाने, सम्भ्रांत परिवारों से आए शिष्ट गवाहों की भांति मुझे घेरकर खड़े हो गए।''छोटी' अथाह जलराशि में डूबती भाभी सहसा तिनका पा गईं। मेरा हाथ, अपनी गोरी गुदगुदी हथेली में थामकर, उन्होंने शीतल सद्य अभिषिक्त शिवलिंग पर धर दिया, इनकी शपथ खाकर कह छोटी यह सब सच है।'

मैं एक पल के लिए झिझकी। संस्कारशील चित्त ने हथेली हटाने की चेष्टा भी की, किंतु घाघ भाभी ने हाथ कसकर दाबा था।

" 'हां, भाभी, सच है।' मैंने कहा।

' उन्होंने फिर एक शब्द भी नहीं कहा। घर पहुंचते ही जेठजी द्वार पर मिल गए।

' 'अरे छोटी, आज तुमने दुबारा चाय नहीं पिलाई, तो तृप्ति ही नहीं हुई। बनाओ तो एक प्याला बढ़िया चाय।' उन्होंने हंसकर कहा। कालिंदी

भाभी उन्हें आग्नेय दृष्टि से भस्म करती भीतर चली गईं और फटाक से अपने पलंग पर लेट गईं।

"मैं स्टोव जलाकर जेठजी के लिए चाय बना ही रही थी कि हंसती-हंसती मालिनी भाभी आ गई, क्यों री छोटी, लगता है कुछ गहरा मजाक कर आई है! वाह भई, मान गए तेरी बात। तूने बीरबल का भी हंसा दिया।'

'चाय उबली भी नहीं थी कि जेठजी भागते भागते आए, 'लगता है कालिंदी को रक्तचाप का बेढब दौरा पड गया है, वह तो एकदम बेहोश-सी पडी है। आंखें ही नहीं खोलती।'

"उनकी आंखें फिर सचमुच ही नहीं खुलीं। देखते ही देखते, तीन चार डाक्टर आए, उन्हें तत्काल अस्पताल ले जाया गया। किसी आकस्मिक उत्तेजना से दिमाग की नली फट गई थी। सेरिब्रल थ्रबोसिस या तो अब प्राण हरेगा या वाणी!

'भगवान कर, ऐसा ही हो' मैं मनाने लगी। मेरे कलमुंहे घातक मजाक की, मेरे देवतुल्य जेठजी से, भाभी कभी कोई कैफियत न मांग सकें।

'पर बिना किसीसे कैफियत मांगे ही कालिंदी भाभी मन का समस्त अव्यक्त आक्रोश मन ही मे लिए रात के ठीक दस बजे चली गईं। ऐसी आकस्मिक मृत्यु के लिए मैं प्रस्तुत नहीं थी। पर सच पूछो तो वे गई नहीं हैं। तब से नित्य रात आधी रात मेरी छाती पर चढकर कहती हैं—'तूने झूठी शपथ खाकर मुझसे मेरा पति छीना, अब तुझे भी पति का सुख नहीं भोगने दूंगी।' जब-जब अच्युत मेरे पास आते हैं, वे साथ रहती हैं। वह देख वह देख अब मैं कहां छिपूं—कहां?"

व्याकुल होकर वह मुझसे लिपट गई। मैं घबडा गई अभी तक तो यह अच्छी भली थी। अब हजरतगंज के भीड-भरे चौराहे पर, कार मे थर थर कांपती मुझसे लिपटी अपनी इस विचित्र संगिनी को लेकर, मैं कब तक बैठी रहूंगी!

सहसा एक बलात कंठस्वर सुनकर मैं चौंक उठी, 'कितनी परेशान कर डालती हो तुम शुभ्रा!"

उसने शायद पहले मुझे नहीं देखा। फिर देखते ही नम्र स्वर मे बोला, "क्षमा कीजिएगा, असल में घंटे भर से इन्हें ढूंढता-ढूंढता परेशान हो गया हूं।

"मैं चलूं शुभ्रा।" मैंने कहा, पर वह तो जैसे काठ बन गई थी, कार के कांच पर खडी भावनाहीन दृष्टि और कठोर मुखमुद्रा! मैं सहमकर उतर गई।

"चलिए आपको छोड दूं।" उस सौम्याकृति प्रौढ़ ने कहा।

"नहीं, आप चिंता न करें। मैं रिक्शा कर लूंगी।"

अपराधी कौन

अमला बार बार बाहर आती और अपने सजे बगले की अनूठी सज्जा देख कर स्वय ही मुग्ध हो जाती। रगीन नीली मद्धिम रोशनी के लटटू, पेड की हर पत्ती पर जुगनू बने चमक रहे थे। शामियाने की रगीन छाह मे कई सोफे और कुर्सिया मण्डलाकार घेरे मे रखवाते श्यामबिहारी एक साथ कई निर्देशन दते किसी कुशल बैण्ड मास्टर की भाति हवा म दोनो हाथ उठा उठाकर गिरा रहे थे। अमला को पति की हडबोंग देख, हसी आ गई। एक तो वैसे ही सामाय सी घटना स उत्तेजित हो उठते थे, उसपर आज पहली पुत्री का विवाह था। वह पति से कही अधिक मात्रा म आश्वस्त हो बारात की प्रतीक्षा कर रही थी। आखिर घबराती भी क्यो ? सब ही कुछ तो द रही थी, कनक को ? फ्रिज, रेडियाग्राम, फियेट और फिर एक तगडा सा चैक। बीसिया भूखी शेरनी सी माताओ के मुख से वह अपने भावी जामाता का पुष्ट ग्रास लुभावने दहेज के बूते ही तो छीन पाई थी। उसकी कनक सावली थी, पर इस युग मे क्या जामाता भावी पत्नी का रग देखता है ? उसे तो अब भावी श्वसुर के ओहदे का रग ही अधिक आकर्षित करता है। जहा तक इसका प्रश्न था, श्यामबिहारी अपने ओहदे के चोखे रग से किसी भी सुपात्र को चुम्बक की भाति खीच सकते थे। एक तो वे कमिश्नर थे, उसपर आई० सी० एस०।

'हम आई० सी० एस० अब रीवा के अलभ्य सफेद शेरो की भाति, अपनी वश वृद्धि की क्षीण सम्भावनाओ के कारण अनमोल हो उठे हैं।"—ये प्राय ही हसकर अमला से कहते रहते। आज तो उन्ह बात करने की भी फुसत नही थी। सुबह से जनवासे का ही प्रब-ध देख रहे थे। नाऊ, तम्बोली, धोबी—सबके तम्बू तन चुके थे और तीनो किसी अ-तर्राष्ट्रीय प्रदशनी के से विभि-न स्टाल मे खडे अधिकारियो की ही तत्परता से मुस्कराते खडे थे। यह भी इस अनोखे युग का एक अनोखा रिवाज चल पडा था। आएगे छैला बाराती बनकर, पर दजनो घडे से निकाले गए सूट इस्त्री करवाने क-या के पिता के यहा ही लाएगे। जिस देखो वही हजामत बनवाने बैठ जाएगा, चाहे घराती हा या बाराती। 'मुफत का च-दन घिस मेरे न दन', इसीको कहते हैं। कही बारातियो के आने के पहल ही सब पान निगोडे घर ही के मेहमान न चर डालें—अमला मन ही मन भुनभुना रही थी। एक तो घर क ही मेहमाना न चार दिना म उसका पटरा बैठा दिया

था। पाच दर्जन तो बच्चे ही भिनभिना रहे थे, उसपर देवरानी जेठानी और चचेरी ममेरी ननदो के नखरे देख उसका खून खौल रहा था। इसीसे भागकर बाहर आ गई थी। बरेली वाली ममिया सास को लहसुन प्याज की बदबू से दिल के दौरे पडने लगते थे, उनका कमरा अलग करके उठी ही थी कि दो चचेरी ननदो मे बच्चो को लेकर भयानक युद्ध छिड गया था। दोनो सगी बहनें थी, पर आज आमने सामने तनी रणचण्डी ही तो बन गई थीं। उन्हे छुडाकर अलग किया, तो उसकी स्विस भाभी एक ही पटीकोट और बिना बाहो का ब्लाउज पहने अर्धनग्नावस्था मे अदली चपरासियो के सामने ही उससे साडी पहना देने का अनुरोध करने आ धमकी। पिछले माह उसका छोटा भाई विदेश से एक लम्ब-तडगी ब्याह लाया था। क्या करती बेचारी अमला भाई को बुलाती और भाभी को कँस छोड देती! उसकी ताड सी देह मे साडी लपेटना आकाश मे चन्दोवा टाकना था। साडी पहनाते ही वह चटपट बाहर निकल आई थी। बारात भी तो आती ही होगी उसने घडी देखी, अभी देर थी। पर बारात के आने से भी अधिक चिन्ता उसे एक और व्यक्ति के आने की थी और वह थी उसकी खास प्रवासिनी ननद मीना, जो पूरे बीस वर्ष बाद माइके लौट रही थी।

कभी यह ननद उसकी प्राणप्रिया सखी थी वही उसे सिर आखो पर बिठा कर इस गृह मे लाई थी, उसकी सास ने तो दूसरी लडकी पसन्द की थी।

कुछ दिनो तक दोनो की मैत्री, मुहल्ले भर की स्त्रियो के हृदयो मे विष घोलती रही।

दोनो एक से कपडे पहनती हसती, खिलखिलाती एक दूसरी को बाहो मे लिए फिरती रही, फिर जैसा प्राय ऐसी प्रगाढ मैत्री का अन्त होता है, वैसा ही हुआ। अचानक दोनो मे ऐसी ठनकी कि आखो ही आखो मे नगी तलवारें लप लपाने लगीं और दो टूट हृदयो की दरार, मीना की विदा तक नहीं जुडी। झगडे का सूत्रपात हुआ था आभूषणो को लेकर। मीना की विधवा मा का पूरा गहना, एक सामान्य सी पोटली मे बधा काठ के बक्स मे पडा रहता। कई बार पुत्र के समझाने पर भी, वे बैंक मे रखने को राजी नहीं हुईं तो खीझकर श्याम बिहारी ने कहना ही छोड दिया, पर इधर उनका अधिकाश समय तीर्थयात्रा मे ही निकलने लगा था और वे एक एक कर अपने आभूषण कभी बद्रीनाथ चढा आती, कभी रामेश्वरम्। एक दिन अमला और मीना ने मन्त्रणा की, जैसे भी हो अम्मा के इस धार्मिक औदार्य के सलाब को बाधना ही होगा।

'अम्मा जी, अब मीना की सगाई हो गई है, आप ऐसे गहने मत लुटाइए"' अमला ने एक दिन सास को टोक दिया।

"हा, अम्मा आज फसला ही कर दो क्या मुझे दोगी और क्या भाभी को" मुह लगी मीना ने दोनो बाहे अम्मा के गले मे डाल दी, "कहीं ऐसा न हो कि

कभी इसी करमजली पोटली के पीछे हम दोनो न्ड पड़ें।"

अमला हो होकर हस उठी थी।

तब तक दोनो ननद भाभी, अटूट मैत्री के इस रस सागर मे आकण्ठ डूबी थी। इसीसे कलह की काल्पनिक सम्भावनाओ का प्रसग भी हास्यास्पद लग उठा था।

ला मरी, निकाल ला पोटली, आज ही बाट बटकर झगडा निबटा दू" अम्मा ने चाबी का गुच्छा हसकर पटक दिया था और मीना चटपट पोटली निकाल लाई।

ओफ कैसे कैसे भारी गहने थे, टोक मगर, अनन्त, जयपुरी झूमर रामपुरी मछलिया चन्द्रहार बेसर और कुन्दन की पहुची।

मीना के नाना सिविल सजन थे अम्मा इकलौती पुत्री थी इसीमे नाना ने गहनो से लाद दिया था सबसे विलक्षण आभूषण था, एक लम्बी नीली मखमली डिबिया म ब द नागिन क आकार की लचकती करधनी।

उसकी जालीदार नक्काशी पहले भी कई बार ननद भाभी को झुमा चुकी थी पर तब ईर्ष्या का सप फन फैलाकर दोनो म से एक को भी डसने नही दौडा था।

आज दोनो के कलेजे एक साथ धडक उठे। पता नही अम्मा करधनी किसे देंगी।

मीना सोच रही थी, 'मैं तो अम्मा की इकलौती बिटिया हू, करधनी मुझे ही देंगी।"

अमला सोच रही थी कितने अरमानो की बहू हू मैं! करधनी हो न हो मेरे ही हिस्से म आएगी।" अम्मा की ख्याली हडिया मे उबर उबाल पर उबाल आ रहे थे। सब गहना मन ही मन बाट चुकी थी, पर दोनो की तृष्णा के प्राण उनकी करधनी पर ही अटक है वे जान गई थी। बेटी तो पराया धन है, कल परसो ब्याह होगा तो पराई हो जाएगी। जि दगी तो उसे बहू के साथ ही काटनी थी फिर करधनी भी साधारण नही थी। एक चिररुग्ण जडिया को मीना के नाना ने उसका खोया पौरुष लौटा दिया था। अपनी मूक कृतज्ञता को उसी अनूठी करधनी की कारीगरी म वह सदा के लिए अमर कर गया था। कैसी लपलपाती जीभ थी नागिन की। आखो म जगमगाती दो हीरो की कनिया जडी थी। उस चमत्कारी करधनी का एक और आकर्षण था। एक पेंच घुमाते ही वह अपनी केंचुली छोड देती जो क्षण भर म सिमटकर, बाइ ओर चाबी का गुच्छा बनकर लटक जाती थी। अम्मा कहा करती थी, जब करधनी बनकर आई तो उसे देखने लाट साहब की मेम भी आई थी। वही करधनी आज किस भाग्यशालिनी को मिलेगी!

अम्मा ने एक एक कर गहनों की दो ढेरियां बना दी।
टाक, वेसर, चन्द्रहार अमला का।
कंगण, झूमर, सतलडी मीना की।
राजस्थानी बोरला अटर बटर आया अमला की ढेरी में।
कुन्दन की चम्पावली, उडीसा की कटकी, सोने की कघी मीना की।
दोनो ढेरियां ऐसी न्यायपूर्ण सूझबूझ का प्रतीक थी कि किसीमें भी घट बढ का प्रश्न ही नहीं उठता था।

अकेली करधनी बच गई।

मीना अचानक मचल गई, "अम्मा, चाहे हमारी ढेरी के दो तीन गहने भाभी की ढेरी मे डाल दो, पर हम तो करधनी ही लेंगी।" उसने करधनी सचमुच उठा ली।

सास ने बहू की गम्भीर मुखमुद्रा देखी, तो बडे चातुर्य से बिगडती स्थिति सभाल ली।

"अच्छा अच्छा, देखा जाएगा अभी तो तू दोनो पोटलियां बक्से मे डाल दे। करधनी अलग रख दी है मैंने, पुर्जी डाल दें। क्यों है ना बहू ?"

पर अम्मा की पुर्जी के पहले ही नियति की पुर्जी पड गई।

मीना के विवाह की तिथि निश्चित हुई तो गहने झलवाने सुनार बुलवाया गया। दोनो पोटलियां के गहने ज्यों के त्यों धरे थे अकेली करधनी ही नहीं थी।

अम्मा तो पागल ही-सी हो गई थी। एक तो शुभकार्य के पहले सोना खो गया था, महा अपशकुन उसपर उनका सबसे प्रिय आभूषण। अम्मा ऐसा फूट फूटकर बाबूजी की मृत्यु पर भी नहीं रोई थीं।

पर यह हो कैसे गया चाबी तो निरन्तर उन्हीके पास रहती थी, कभी कभी बहू माग लेती और कभी बिटिया। शीशम का वह बक्सा उन्हींके कमरे में धरा रहता और वे दिन-रात उसी कोठरी में खजाने पर बैठे सर्प की भांति कुण्डली मारे बैठी रहती।

भोली अम्मा भागती भागती भृगुसंहिता के पंडितजी के पास भी गई थीं।
'खोयी वस्तु का चोर घर ही में है पर मिलेगा बीस साल में।"

'भाड़ मे जाए करधनी," मीना के आंसू टपकने लगे थे। बीस वर्ष तक क्या उसकी कमर ऐसी ही लचीली रह जाएगी ! क्या करेगी करधनी का जब कमर ही नहीं रहेगी !

फिर बेचारी रिक्त कमर लेकर ही ससुराल चली गई थी। श्वसुर फांस मे इत्र के प्रसिद्ध व्यवसायी थे। पति के साथ मीना ने स्वदेश त्याग दिया धीरे धीरे वह मां, भाई भाभी सबको भूल गई, पर करधनी को नहीं भूल सकी।

इतना वह खूब समझती थी कि चतुरा नटिनी सी भाभी की फुर्तीली उंग-

लियों ने ही भोली अम्मा की चाबी तिड़ी कर रात ही रात में करधनी गायब कर दी थी।

आज पूरे बीस वर्ष पश्चात वह भाई का पत्र पाकर स्वदेश लौट रही थी। अम्मा अब नहीं रही, पर फिर भी मायका मायका ही था। भैया को देखा तो वह रही सही पूर्व खिन्नता भी बिसर गई। भैया ने मूंछें रख ली थी, कनपटी के बाल सफेद हो गए थे और क्षण भर को उसे लगा जैसे बाबूजी ही हंसते खड़े हो गए हैं और मौसी! कितना बुढ़ा गई थी मौसी, सामने के दो दांत टूट गए थे, ठीक जैसे अम्मा की पोपली हंसी का नक्शा फिर से उतारकर रख दिया था विधाता ने?

वह तो आंसू ही नहीं रोक पाई, "क्यों री मुनिया, दामाद को नहीं लाई?" मौसी ने पूछा।

"अरी मौसी उन्हें क्या अपने कारोबार से फुर्सत रहती है!" उसने बड़े गर्व से कहा और भाभी की ओर बांहें फैला दीं।

उसकी लंबी भाभी बेहद फूल गई थीं। करधनी धरी भी होगी तो इस विराट परिधि को कहां घेर पाएगी। उसे मन-ही मन गहरा संतोष हो गया। उसकी कमर तो अभी भी विदेशी कोर्सेट के बंधन में कसी, उसकी कौमार्यावस्था का इक्कीस इंची घेरा निभा रही थी।

"तुम तो मीना वैसी की वैसी ही धरी हो," भाभी का कण्ठस्वर भी शरीर के साथ साथ मांसल हो उठा था।

"भतीजी कहां है मेरी?" मीना ने बड़े लाड़ से पूछा और भाभी ने एक सांवली सी लड़की को उसकी ओर ठेल दिया।

मीना ने भतीजी का माथा चूमकर कहा 'मेरी दिव्या से सवा महीने बड़ी है तू।"

"उसे क्यों नहीं लाई बुआ?" भतीजी ने पूछा।

"उसे अपनी दुकान सौंप आई हूं रानी, एक दिन भी बन्द रहती तो लाखों का नुकसान हो जाता, क्रिसमस आ रहा है," बुआ ने दर्पपूर्ण उक्ति से महिला वृन्द को घायल किया और धम्म से कुर्सी पर बैठ गई।

मीना की दुकान 'भारती' वास्तव में फ्रांसीसी सुन्दरियों के लिए एक बहुत बड़ा आकर्षण थी। भारतीय गहने साड़ियां, आलता नकली चोटियां, भ्रमर यहां तक कि मांग भरने का सिन्दूर और बिछुए का जोड़ा भी मिल सकता था वहां। कभी फ्रांस में इक्के दुक्के भारतीय विवाहों के लगन जुलते तो मीना की दुकान ही सोहाग पिटारी जुटाती।

काश अम्मा की करधनी होती तो वह टिकट लगाकर प्रदर्शनी से ही मालामाल हो जाती। ऐसी व्यावसायिक नटबाजी में उसकी कल्पना बेजोड़ थी।

"कुल जमा तीन दिन के लिए आई हू भाभी, इधर तुम्हारी रानी विदा हुई और मैं उडी फास को।"

अपने तीक्ष्ण रगे नखों को उसने चिडिया के उड जाने की मुद्रा मे चमका कर भतीजी को बुरी तरह प्रभावित कर दिया। जयमाल का समय हुआ तो अतिथियों की दृष्टि सलौनी दुल्हन के चेहरे पर टिकने के बजाय उसकी प्रौढा बुआ की सावली गर्दन पर जम गई।

मीना एक अद्वितीय हीरों का हार पहने द्वार पर खडी मुस्करा रही थी। फुसफुसाहट तीव्र हो उठी।

'कैसे जगमगा रहे है!"

"असली हीरे है।"

"चल हट विदेशी नकली हार भी ऐसे ही जगमगाते है। पिछले साल मेरा छोटा भाई मॉण्ट्रीयल से लाया था।"

"नही नही, फ्रास म इनके श्वसुर का लाखो का व्यापार है, इनकी भी तो दुकान है।"

"क्या बेचती है!"

ही ही ही—ईर्ष्यालु स्त्रियो का अशिष्ट स्वर उनके कानो के पास ही सरक आया पर उस जगमगाती बुलद इमारत के सामने छोटे मोटे आभूषण पहने भडकीली नारियों की आभा सहसा तुच्छ हो उठी, जैसे झोपडियो पर धरे दिए टिमटिमा रहे हो।

'क्यो री मुनिया, हार तो असली लगै है, आठ दस हजार का तो होगा ही," मौसी न बडी ललक से, हार के लालक को हाथो मे ले लिया।

"अस्सी हजार का है मौसी" मीना ने कुछ ऊचे ही स्वर मे कहा। अपने दामी आभूषण का मूल्य बताने म क्या कभी नारी चूकती है। फिर तो दूल्हे को देख ही कौन रहा था! आखो ही आखो म हार की आलोचना चल रही थी।

"कहा था ना मैंने, अस्सी हजार का है।'

"ऊह सूरत तो सवा सौ की भी नही है।" पर एक एक कर झोपडियो के टिमटिमाते दिए बुझ गए, बुलद इमारत जगमगाती रही। दूसरे दिन बारात विदा हो गई और अतिथियों के बिस्तर बधने लगे। एक तो लडकी के विवाह की रौनक, विद्युत छटा सी क्षण भर मे ही लुप्त हो जाती है उसपर गृहस्वामिनी भी अतिथियो को रोकने के मूड म नहीं थी। मीना न भी भाभी के तुच्छ स्वभाव को परख लिया था, उसने जाने का प्रसग उठाया, तो अमला ने औपचारिक स्नेह की सामान्य दलीलें दी फिर मान गई।

"बाजार से तुम्हारे लिए मेवे और ताजी मिठाई लेती आऊ," कह वह झोला लेकर चली गई, तो मीना विवाह के झभट के बाद पहली बार घर म

"हाय मेरा कनेजा तो तुम जानती हो, एकदम पिद्दी का है। सोचा, एक तो अम्मा क गौन म महाराजिनी आई थी, उतना मानती थी अम्मा, कही करधनी नही निकली तब ?" भाभी के चेहर पर ऐसा बचपना खेलने लगा जैस दूध के दात भी न टूटे हो।

'हाय रे मेरी पिद्दी," मीना न बडे लाड से भाभी को बाहुपाश मे कस लिया, "अब खबरदार जो उस करधनी का नाम लिया मुझस बुरी कोई नही हागी, हा, सामान बाध लू, फिर रात का खूब आराम स बातें करेंगे।"

करधनी सबसे नीचे धरी फ्रेंच शिफौन की साडी क नीचे, हीरो के हार के साथ कुण्डली मारे पडी थी।

उस रात को बारह बजे तक ननद भाभी बतियाती रही।

हार सहेजकर रख लिया ना मीना, कही बटुए म ही धरकर तो नही भूल गइ ? बडी लापरवाह हो तुम," भाभी ने पूछा तो मीना अधेरे ही अधेरे मे मुह फेर कर मुस्करा ली।

"हा भाभी, वह तो मैंने कल ही सूटकेस म बन्द कर लिया था।"

"मैं तो आज तुम्हारे ही साथ सोऊगी पता नही फिर कब मिलना हो!" वह कूदकर मीना के साथ लिपट गई।

सुबह उठी तो भाभी उठकर, उसके साथ धरी जान वाली पकवानो की टोकरी सजा रही थी।

भाई भाभी दोना उसके साथ स्टेशन भी आए पर तीना ऐसे ठीक समय पर पहुचे कि सामान लगाते ही गाड न भण्डी हिला दी। बडी हडबडी म मीना द्वार पकडकर ही खडी रह गई। अपन वातानुकूलित डिब्बे मे वह अकेली थी।

"दामी चीज लेकर सफर कर रही हो मीना, सूटकस को सिरहान धर लेना," भाभी उसके पास ही आकर फुसफुसाई तो मीना का चित्त पश्चाताप से खिन्न हो गया।

कितनी नीच थी वह! बीस वष पहले भाभी न उसकी गदन पर छुरी फेरी थी, आज वह उसी जघन्य अपराध का दुहरा रही थी। अब तो उसके जी मे आ रहा था, वह करधनी निकालकर भयाभाभी के चरणो मे लोट, अपना अपराध स्वीकार कर ले। विदा की वेला पुन अम्लान हो उठेगी।

पर गाडी स्टेशन छोड रही थी, किसी भी भावुकता के लिए अब समय नहीं था। भाई और भाभी की आखें गीली हो आई थी, अमला बुरी तरह नाक भिझोडती सिसक रही थी।

मीना भी अब अपन का नही रोक सकी और बच्चो की भाति सुबक उठी।

एक घण्टे बाद तूफान धडधडाती पटरिया का कलेजा रौन्दती चली जा रही थी और मीना दानो हाथो से माथा पकडे, शून्य दृष्टि से अपन चारों ओर बिखर

साडियो के अम्बार को अविश्वास स देख रही थी। वह बार बार एक एक साडी को झटक रही थी, यही श्रम वह पिछले एक घण्टे म बीसियो बार दुहरा चुकी थी।

नहीं कही नही थी—आखिर सुई तो थी नही।

रात भर भाभी उसे गलबहियो म घेरकर सोई थी चार्बी का गुच्छा पार करने मे उन अद्वितीय उगलियो न फिर अपनी प्रतिभा का प्रदशन कर दिया था। करधनी ता गई ही साथ म उसके हीरो का हार भी ले गई।

अब वह अतुल को क्या मुह दिखलाएगी। जल्दी-जल्दी मे बीमा भी तो नही करा पाई थी। फिर मायके म गहने की चारी क्या कुछ कम लज्जास्पद घटना है!

अब क्या करे? क्या फिर मायके लौट जाए? क्या कहेगी भाभी से? यही ना कि भाभी तुमने मेरे हीरे का हार चुरा लिया!

पर भाभी तो पलटकर जिह्वा का घातक प्रहार सिद्ध कर सकती थी—"मीना, तुम क्या मेरी करधनी चुराकर नही भागी?"

उसके हीरे के हार का कवल लोलक ही बेचने पर, भाभी के पूरे खानदान की बटिया ब्याही जा सकती थी। हाय! कितन छोटे अपराध की कितनी बडी सजा दे गई भाभी।

तोप

तोप से मेरा परिचय आज का नही, उस ऐतिहासिक युग का है जब वह सचमुच बारूद और आग के गोले उगलती तोप थी।

हमारी खिडकी के लोहे के जगला से हाथ डालकर ही उसके दुमजिले मकान की छत छुई जा सकती थी। एक कागजी फूल की व यलता ने जग लगी छत को पूरा घेर लिया था। जजर टीन के टुकडो की पत्रिया ठोक ठोककर बरामदे की सुरक्षा का यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी एक दीवार आधी टूट गई थी। जजर मकान को गिरा देने का नोटिस जब तोप का मिला, वह सीना तानकर अपनी छत पर खडी हो गई थी और नगर पालिका के हिंदू चेयरमैन पर उसने ऐसी भयानक गोलाबारी की थी कि उसके मकान गिराने के दु साहसी प्रस्ताव को फिर कभी नही दुहराया गया।

द्वितीय महायुद्ध स स्तब्ध अल्मोडा शहर की छावनी मे बाहर से आस्ट्रेलियन सिपाहियो की एक बहुत बडी फौजी टुकडी आ गई थी। शहर की बहू बटियो न मदिरो के दशन के लिए भी जाना छोड दिया था। सूप सी तिरछी खाकी टोपिया लगाए मकटमुखी फौजी टुकडी के लम्ब तडग खबीस अपने लोहे की कील जडे बूटो से डामर लगी सडक का कलेजा दहलाते परड करने निकलते, तो पटापट खिडकिया ब द होने लगती, पर तोप की खिडकी के पट सदा खुले रहत। यही नही, पल्टनी बूटो की पदचाप सुनते ही वह अपना आधा धड खिडकी से नीचे लटका देती, साथ ही ह हनी " "हैलो, स्वीट हाट" के स्वरो के पत्रपुष्प, सीटियो से सवारकर तोप को अर्पित हो लगते उधर तोप भी बार बार अपनी अगुलिया चूम, अदृश्य चुम्बनो का गुच्छे का गुच्छा हवा म फूक्कर सडक पर बिखेर देती। मैं उस निडर नारी का दु साहस दखकर दग रह जाती। जिन गोरा को देखकर पहाड के पुरुषो के भी छक्के छूट जात थे, उ हीसे तोप की मत्री के रहस्य को मैं समझ ही नही पाती थी, फिर शायद समझने की मेरी उम्र भी नही थी। सध्या होते ही तोप का दरबार जुट जाता, नगी छातियो पर 'आई लव यू' का गोदना गुदाये, आस्ट्रेलियन लम्बे भूत से गोरे तोप का गोद म उठाकर ऊचे स्वर म गाने लगत। कभी उसे चूम चूमकर हवा म गेंद की भाति उछाल देते, बडी रात तक उनकी हा-हा, ही ही चलती रहती सुबह रग उडी तोप अपनी खिडकी के सामन खडी हो जाती तो अम्मा बौखला जाती — 'एक तरा बाप था

टॉमस मास्टर जब तक इस हिन्दुओं के मुहल्ले में रहा, एकदम हिन्दू बना रहा। दीवालियों में दीये जलाता था और होलियों में उड़ाता था अबीर-गुलाल। एक तू है, जो नंगेपन पर उतर आई है!"

"तो वह बेचारी भी तो अबीर गुलाल ही उड़ा रही है! अम्माजी, क्या बेकार कोस रही हैं!" छोटी भाभी खिड़की पर तोप को सुना सुनाकर कहती और तीनों भाभियां ठहाका लगाकर हंस पड़ती। तोप भी निलज्जता से हंसने लगती। मैं अचरज से कभी भाभियों को देखती, कभी उसे। कहां हाली खेली थी तोप ने! रंग से उसे बेहद चिढ़ थी। पिछली होली में हमने उसे रंग से भिगो दिया, तो उसने आफत ही कर दी थी। पर अब समझ में आया, ईश्वर के यहां से प्राणों में अबीर गुलाल भरकर लाई थी वह अद्भुत नारी। दोनों हाथों से उलीचने पर भी उसकी रंगीन धरोहर की मंजूषा कभी रिक्त नहीं हुई।

तोप का नाम तोप नहीं था। नाम था क्रिश्चियाना वैरोनिका टॉमस। कण्ठ के पुरुष स्वर, छः फुटे मर्दाने शरीर और कृष्ण वर्ण को देखकर किसी कलामर्मज्ञ ने तोप नाम धर दिया था। कण्ठ की गर्जना से उसका स्वभाव अछूता रह गया था। प्रत्येक मोटी औरत की भांति वह सरल और निष्कपट थी। स्त्रियों में उठना-बैठना उसे पसन्द नहीं था। उसके पिता पिथौरागढ़ के किसी स्कूल में अध्यापक थे। वहीं भोटिया लड़कों के साथ उसने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। फिर तोप को एक मिशनरी मेम मद्रास उठा ले गई थी। मद्रास की जलवायु ने तोप के रंग को और भी काला कर दिया था। "तोप, तुम इतनी काली कैसे हो गई? पहाड़ पर तो डोमनियां भी इतनी काली नहीं होतीं!" हमारी सुन्दरी, रूपगर्विता छोटी भाभी कभी बड़ा क्रूर मजाक कर देतीं, पर तोप कड़े से कड़े व्यंग्य को भी चुटकियों में उड़ा देती—"मद्रास में जो रही हूं, बोज्यू! वहां के तो मुए कौवे भी काले होते हैं!" वह हंस देती। मिशनरी मेम की मृत्यु के पश्चात तोप फिर पहाड़ पर चली आई थी। ऊंचे साहबी रहन सहन से उसका काला चेहरा बुद्धि प्रदीप्त हो उठा था। तेज लाल रंग की साड़ियां पहनकर वह घूमने निकलती, तो छोटी भाभी फिर तुरुप लगातीं—"हाय हाय, कोयले की कोठरी में फिर आग लग गई!"

तोप हंसती और उन्हें चिढ़ाने के लिए बालों में पीला फूल लगा लेती—'क्या करूं, बोज्यू, दिन रात सालों खाकी वर्दी पहनते पहनते तबियत ऊब गई है, इसीसे आज यह साड़ी निकाल ली!"

तोप फौज में बैंकाई बन गई थी। एक दिन अपनी खाकी वर्दी में वह हमसे मिलने आई, तो तीनों भाभियां हंसती हंसती दुहरी हो गईं—'क्यों जी तोप क्या काम करना होता है फौज में तुम्हें?'

छोटी भाभी ने उसके कान में न जाने क्या कहा और तोप लाल पड़ गई—

"हमको यह सब सस्ता मजाक पसन्द नही है, यार !"—कहकर वह भरभराकर चली गई थी। फिर वह हमारे यहा सचमुच नही आई।

तीसरे दिन उसकी छुट्टिया खत्म हो गइ। उसे सिकन्दराबाद जाना था। मैं स्कूल जा रही थी तो देखा, खाकी वर्दी मे दोय्याल के सिर पर सामान लादे तोप चली जा रही थी। वर्षों तक तोप का कोई पता नही लगा। इस बीच बडी भाभी के पैर मे कील चुभी। गैंग्रीन ने उनके प्राण ले लिए। मझली भाभी के खानदान का तीन पीढियो का पागलपन उन्ह भी बरेली के पागलखाने मे खीच ले गया। छाटी भाभी को काले साप ने काट खाया। प्राण तो नही गए पर साल म छ महीने उनकी टाग मुदगर सी सूजी रहती और वह यन्त्रणा से चीख चीखकर छटपटा उठती। लोहे के जगले पकडकर खिडकी स मैं तोप क टूटे मकान को देखती। मरी आखें भर आती। न हमने हसाने वाली तीन भाभिया ही रह गई थी, न बारूद के गोले उगलनवाली तोप! मायके की देहरी से ऐसी वितष्णा शायद ही किसी लडकी को हुई हो!

मेरे पति की नौकरी दौरे की थी। प्राय ही वह लम्बे दौरे पर गर्म्या और मुनस्यारा की बीहड घाटियो म उतर जाते और मैं अकेली रह जाती। बच्चे बोर्डिंग म थे, इसीसे मैं भी इधर उधर घूम आती। मुक्तेश्वर मुझे बेहद पस द है। साफ सुथरे बगले, पहाड के वक्ष को चीरती फाडती, नक्शे मे बनी नदियो की क्षीण रेखा सी पतली मोटर की सडकें, पहाडी लोकगीतो की मिठास स मीठी बयार मे मधु घोलने वाले, सडक साफ करते पहाडी गैंग कुलियो का कण्ठस्वर, छोटी छोटी दुकानो मे काठ के काले ठेको म छलकता पीला रायता और थाली मे तप्त काचनवर्णी हल्दी से पीताभ बने जम्बू छौंके आलू। मैं प्राय ही बहन स मिलन मुक्तेश्वर चली जाती। उस दिन भी मैं मुक्तेश्वर ही जा रही थी। श्रावण का महीना था। लहगा दुपट्टा पहन, थाल से चन्द्रबिम्ब को नथ से सवार, सुन्दरी पहाडिनियो का झुण्ड का झुण्ड जल चढ़ाने महादेव की गुफा की ओर जा रहा था। कही स पार्थिवपूजन के रुद्रो के श्लोको की मधुर आवृत्ति का स्वर हवा म तरता आया, तो मेरे पास ही बठे एक बुजुग शायद उस नये जोडे को, जो अपन निलज्ज प्रेम प्रदशन स उनकी बूढी मज्जा जलाए जा रहा था, सुना-सुनाकर कहने लग— 'कुछ भी कहो, भाई, मर्यादा तो अपने कुमायू मे है, बस, और कही नही! श्रावण का पहला सोमवार और महाहा भोल, तरी महिमा नि हर पहाड स रुद्री क श्लोक गूज रहे हैं! पहाड की सडको पर भी देखो, कहीं गन्द विज्ञापन नही। लिखा भी है, तो चाय छोडो, 'शराब छाडो। अब बाहर देश म चले जाओ। मरे यार, तो कही दीवारा पर लिखा है क्या? गन्दी बीमारियो का इलाज! छि! थू!" बडी घृणा से उन्होंने बाहर थूका। दिशा ज्ञान ठीक नहीं बैठा और उनके उडत थूक के पवित्र छींटो ने नय जोड के दोनो चेहरो का रग दिया।

फिर तो वह रग जमा कि बस ! जोडा पजाबी था, बुरी तरह पडितजी के पीछे पड गया।

उधर, बाहर गरज के साथ छीटे पडने लगे थे। पिछली तीन रातो से पानी बरस रहा था। बस के भीतर चल रहे गृहयुद्ध के नाटक की यवनिका को प्रकृति ने अचानक गिरा दिया। एक पहाड का वाम अग भरभराकर गिर गया। ड्राइवर ने हथियार डाल दिए। अब वह न आगे जा सकता था, न पीछे। यात्रियो के सम्मुख उसी ने प्रस्ताव रखा— मेरे भरोसे सामान छोड सकें, तो आप लोग आराम से भुवाली जाकर रात बिता लीजिए। कल तक शायद कोई इन्तजाम हो जाए।"

सब यात्री एक एक कर हाथ मे झोला लिए उतर पडे। पहाडी ड्राइवर के ईमान को प्रहरी बनाकर सामान छोडने मे किसीको आपत्ति नही थी। मैं भी अपना बग लेकर उतर गई। पानी बरस रहा था, पर मैंने साथ मे बरसाती रख ली थी उसीको ओढकर मैं तेजी से भुवाली की एक परिचित पगडण्डी की ओर मुड गई। मेरी एक विधवा भतीजी भुवाली के स्कूल की प्रधानाध्यापिका थी। सोचा, वही एक दो दिन बिताकर नैनीताल लौट जाऊगी।

सनेटोरियम का गेट दिखते ही पैर ठिठक गए। कितनी ही पुरातन स्मृतियो का कलश छलक उठा। गेट मे लगे रेस्ट हाउस की कुरसी पर बैठी बालसखी कुसुमी का पीला चहरा फिर बडे ताऊजी उसी कुरसी पर बठे डाडी कुलियो की प्रतीक्षा मे टुकर टुकर कभी मुझे देखते है कभी दद्दा को। कनछोपी ऊन की टोपी मे उनका गोरा चेहरा किसी गोरे अग्रेज सिपाही का सा लग रहा है। आखें बार बार भरी आ रही हैं। जानते है, एक बार सनटोरियम की उस ऊची चढाई को चढकर बिरल ही रोगी उसका उतार उतरते हैं। कुसुमी भी नही उतरी। बडे ताऊजी को तो गलपिंग टी० बी० था, तीसरे ही दिन वह जीवन का सबसे सुखद उतार उतर गए।

आज भी वह छोटा सा हवादार कमरा, मोटर की सडक से लगा वसे ही खडा है। मृत्यु पथ के न जाने कितने यात्रियो ने इसी कुरसी पर क्षण भर को विश्राम किया है। सामने जगलात का एक छोटा सा नया प्रतीक्षालय बन गया है। सैनटोरियम को जाने वाला पथ अब मरीजो के लिए मत्री का आह्वान लिए प्रशस्त बाहे फैलाए खडा है। पहली सकरी सी पगडडी कही खो गई है। उसी प्रशस्त पथ से सरासराती एक जीप, तेजी से फिसलती मेरे पास आकर अचानक रुक गई। सिर पर बैंजनी चटक स्कार्फ बाधे, लाल कसी जीन और काल कार्डिगन मे दो हाथो मे फलो और अण्डो से लदी फन्नी एक महिला उतरकर ड्राइवर को कुछ आदेश देने लगी—'साब को हमारा सलाम बोलना बहुत बहुत। कहना, तीनो मरीजों का स्प्यूटम हम कल भेजेंगे।" जीप दनदनाती वापस चली गई।

महिला ने शायद अब तक मुझे नही देखा था। हाथ मे बैग लिए मुझे पेड

के नीचे खडी देखा, तो लपक ग्राई—'किसीका बगला ढूढ रही हू क्या ? कैन ग्राई हेल्प यू ?" वह मुसकराई ग्रौर फिर हाफने लगी। सासो के उतार चढाव के साथ साथ कभी उसकी दाहिनी छाती तराजू के पलडो की भाति ऊपर उठ रही थी, कभी बाइ।

स्पष्ट था कि उसने मुझे नही पहचाना। पहचानती भी कैस ? सन ४३ मे फ्रॉक पहनने वाली जिस लडकी को तोप ने देखा था, ग्रब उसकी लडकियो ने भी फ्रॉक पहनना छोड दिया था। पर तोप ज़रा भी नही बदली थी। वही गोल-गोल मासल ठुड्डिया विभि न सरिताग्रो की जलधारा की भाति उसके ग्रसीम वक्षोदधि मे मिलकर एकाकार हो गई थी। सजन का शोक, शायद बढती उम्र के साथ साथ ग्रौर बढ गया था। गले मे नक्ली मोतिया की माला थी। होठो पर गहरा लिपस्टिक था। छाती ग्रब भी तोप से तीन कदम पहले चल रही थी। सेंट की तीव्र सुग ध क्षण भर म बीहड पथ को महका उठी। तभी तो छाटी भाभी कहती थी— 'यह तोप तो ग्रग्रेजी साबुन की बट्टी सी महक्ती है !"

'किस बगले को ढूढ रही हो, हनी ?" उसने दानो टोकरिया नीचे रख दी ग्रौर न हे रूमाल से पसीना पोछत पोछत फिर पूछा।

मैं जोर से हस पडी—'पहचाना नही, तोप ? दखो, मैं कौन हू ?"

बस, फिर तो तोप बमगालि बरसान लगी—"ग्रो माई गॉड, तू यहा ? इतनी बडी सी ! शादी भी हा गई ! क्या कहती है, लडकिया एम० ए० मे है ? हे मेरी मा मरियम, क्या जमाना इतना गुजर गया ? कहा है ? के कितने बच्चे हैं ? क्या कहती है, बडी के लडके सुरिया के दो बच्चे हैं ? लो, सब ही ने घोसल बना लिए, एक मैं ही हरामजादी तोप की तोप रह गई ! इतना कमाती हू, बच्ची, पर कहते है ना कि हिजडे की कमाइ मूछ मुडाने मे जाती है, एक पसा भी क्या बच पाया है ! चल चल, ग्रब भतीजी फतीजी के यहा नही जाने दूगी मैं ! मेरे बगले म चलना होगा !'

वह ग्रपन ग्रनगल प्रश्नो की गोलाबारी से मुझे छेदती ग्रपने बगले म खीच ले गई।

सात लम्बे लम्बे बाज के वृक्षो से घिरा उसका बगला 'सेवन ग्रोक्स' चारो ग्रोर से सेब के पेडो की ग्राड स भी घिरा था। नीले, ऊदे, पीले पहाडो फूलो की लम्बी कतार की कतार गोलाई से पूरे बगले की परिक्रमा सी कर रही थी। द्वार पर दो बडे बडे लाल-काले रगे पीपो म टाइगर लिली झूम रही थी।

फौज स छुट्टी पाकर तोप वही बस गई थी। "यही रेस्ट हाउस है मेरा।" उसन ग्रपने सु दर बगले को गव से देखकर कहा— 'जिन मरीजो को सनेटोरियम से छुट्टी मिल जाती है, वे ही यहा ग्रात है। कभी कभी बीमार मरीज भी निगोडे गिडगिडान लगते हैं, तो उ ह भी ले लेती हू। हर मरीज से पूर सीज़न

की फीस है मेरी एक हजार । खाना पीना, फल, दूध, अण्डा, धोबी, सब उसीम । इतना सस्ता है इसीसे भेंड बकरियो का सा एक भुड जुट जाता है। पर मेरे यहा दो सख्त पार्बदिया हैं । एक ' उसने अपनी मोटी अगुली दूसरी फली हथेली पर चट से मारी—'औरत मरीज, एकदम नो । नम्बर दो, किराया पेशगी । कही मरीज बीच मे ही चल बसा तो खतम मामला ! पर एक आध मरीज को चैरिटी से भी लेती हू मैं । आजकल एक है बचारा, एम० एस सी० मे फस्ट क्लास फस्ट रिसच कर रहा था कि यह रोग लग गया । सनेटोरियम के लिए पैसा नही था तो हम बोला—कोई बात नही, बाबा, इधर चला आओ । सनेटोरियम के पास दिल नही, ताप के पास बहुत बडा दिल है ।"

ठीक ही कहा था तोप ने दिल उसका बहुत बडा था, पर केवल पुरुषो के लिए। मुझसे उसने अपने चारा मरीजो का परिचय कराया, तो मैं दग रह गई। कौन कहेगा ये बीमार है ! लाल सुख चेहरे भरे-भरे हाथ-पैर और मस्तानी चाल ।

"इनको तुमने पिछले साल देखा होता तो अब क्या कहू । बटा, हरदीप, अपना ग्रुप तो ल आओ जरा !"

तोप बडे उत्साह स दिवान पर बैठ गई और मुझे भी खीचकर बिठा दिया ।

तिकोने चेहरे, तिकोनी आखा और तिकोने जूडे वाला सरदार हरदीपसिंह जो लम्बी दौडो म ससार भर के रिकाड तोडने के चक्कर म यह साघातिक रोग पाल बठा था, मिनटा मे अपनी लम्बी टागें चलाता, एक रग उडी सी तसवीर ले आया । चार डाडियो मे सचमुच ही चारो के चेहरे ऐसे लग रहे थे जस अरथी म बधे मुर्दे हो । 'देखा ना !' हो होकर तोप हसी । "डा० खजान ने इन्हे दुनिया मे सिफ चार महीने रहने की इजाजत दी थी, पर तोप ने इन्हे पूरी जिन्दगी इनाम म दी है ! दवा जानती हो, क्या ? बकरी का दूध और सेब का रस, ट्रा ला ला ला ट्रा ला ला !' तोप अपनी मोटी कमर को दोना हाथो से पकड ढोलक सा बजाने लगी । चारा मरीजा के चेहरो और शरीर पर कही रोग का चिह्न मात्र भी नही था ।

लम्बी टागा वाला हरदीप, सास्कृतिक दल मे रूसवासियो को अपन मनो हारी कत्थक से मोहनवाला पतली कमर छरहर शरीर का धनी मगनदास छगन दास पटेल, चौरस काठी का राधेश्याम माहश्वरी जिसे तोप 'मिजट' कहकर पुकार रही थी । जिसने मेरा ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया वह था राजेन्द्रसिंह । चारो मरीजो म वही सबस चुपचाप था और उसक शालीन व्यवहार को देखकर मैं मन ही मन समझ गई कि वही तोप की चरिटी का दीन याचक था । तीना मरीज मढक की भाति फुदकत तोप की टोकरी म खुदर बुदुर करत कभी सेब निकालकर भकोस रह थ, कभी स्ट्राबरी के लिए तीना

छीना झपटी कर रहे थे ।

"ममी तुम आज फिर ठगी गई ! निहायत खट्टा सेब है !" तोप का मिजेट दो बडे बडे सेब ले, उचककर खिडकी पर चढकर खाने लगा था। 'क्या भाव लाई हो, ममी ?"

"नो मिजेट, तुमको भाव से क्या ? चुपचाप खाओ !" तोप ने उसे झिडक दिया, तो वह खिलौने के क्यूपिड की मुद्रा म दोनो हाथ गाल पर धर कर रुआसा हो गया ।

'बनिया है ना, ममी, कल बकरी से भी उसके दूध का भाव पूछ रहा था !"

सरदार की रसिकता पर तोप हसती हसती पूरा दिवान हिला उठी। "ओ सरदारा तू किसी दिन हसाते हसाते मेरी जान ले लगा !" तोप मुझसे कहने लगी—'हमारे सरदार से कभी सरदारो के चुटकुले सुनो । जो मजा सरदार से सरदार के चुटकुले सुनने मे आता है, वह और कहीं नहीं क्यों, है ना राजेन्द्र ?"

'हू"—कहकर राजेन्द्र अपना मोटा चश्मा निकालकर पोछने लगा।

ताप का प्रतिभाशाली वैज्ञानिक वास्तव में सुदशन था। चश्मे को उतारते ही वह नितान्त भोला किशोर लग रहा था। सेब के रस और बकरी के दूध की महिमा से उसका चेहरा भी रगा था, पर लडका स्वभाव स ही कुछ उदासीन प्रकृति का लग रहा था।

'बडा शर्मीला है हमारा राजेन्द्र !" तोप कहने लगी—"भगवान न चाहा, तो किसी दिन फिजिक्स का नोबल प्राइज़ लगा !"

मैं दो दिन तोप के साथ रही और उसके सवथा मौलिक सैनेटोरियम के सरल वातावरण को देखकर मुग्ध हो गई। अपने मरीजो पर वह प्राण देती थी। बगला ऐसा साफ सुथरा रखती थी कि फश मे चेहरा देख लो। एक आया थी दो बैरे। खाने के कमर की सजावट और बैरा की बुर्राक वर्दी देखकर समय के पूव ही भूख लग आती थी। सन्तुलित भोजन का घडी के काटे के साथ वह स्वय अपने हाथा से परोसती। हरदीप, अण्डा क्या छाड दिया ? मिजेट माहश्वरी, तुमको चुकन्दर खाना ही होगा। एण्ड यू, पटेल, तुम फिर प्लेट पर काटे चम्मच से जलतरग बजाने लगा ?'

सगीत प्रेमी पटेल बीच बीच मे सास्कृतिक दल के अपने प्रवासकालीन जीवन की स्मृतियो म बुरी तरह उलझ जाता। खाना छोड वह सचमुच काट चम्मच स जलतरग बजाने लगा था।

ओह, सारी, ममी, वेरी सारी !" वह घपर घपर पूरा मुग चिचोडने लगता।

'एण्ड यू माई एंजिल तुमको क्या अपनी यूनिवर्सिटी याद आ रही है ? इसको तो अपने हाथ से खिलाना पडता है !" तोप अपने लाडले वैज्ञानिक की कुरसी के पास जाकर जम जाती।

मैं चलने लगी तो तोप के चारो मरीज मुझे छोड़ने बस स्टैण्ड तक आए। उन सबको साथ लेकर नैनीताल आने का निमन्त्रण भी मैंने दिया, पर तोप नही आई।

उसी वर्ष मेरे पति की बदली आगरा हो गई। सात आठ महीने बाद एक बडा प्यारा सा क्रिसमस कार्ड आया तो मैंने आश्चर्य से खोला। बडे दिन के अवसर पर मुझे याद करने वाली तो एक ही थी। तोप ही का था, बर्फ मे फिसलती बर्फ गाडी को खीचते हिरनो का एक प्यारा सा जोड़ा था, नीचे लिखा था—शुभकामनाओ सहित तोप और राजेन्द्र।'

मेरा माथा ठनका, राजेन्द्र ही क्या ? हरदीप, मिजेट और पटेल कहा गए ?

हो सकता है, तीनो रोग मुक्त होकर अपने अपने घर चले गए हो और राजेन्द्र अभी स्वास्थ्य सुधार के लिए रुक गया हो। पर आठवें दिन एक तार आया—"आगरा का ताज देखने हम आ रहे है।" फिर वही तोप और राजेन्द्र !

बात कुछ बनी नही। पूर्णिमा के दिन ताज देखने राजेन्द्र के साथ तोप। पर हो सकता है मन बहलाने ले आई हो। दिसम्बर मे क्या भुवाली मनुष्य के रहने लायक रह जाती है ? फिर तोप अपने मरीजो का कितना ध्यान रखती थी ! यह ठीक था कि न उन्हे दवा पिलाई जाती थी, न बुखार नापा जाता था, पर उनकी प्रत्येक सुविधा असुविधा को वह डायरी मे नोट कर रखती थी। यही नही, प्रत्येक रविवार को वह अपने कुछ मनचले मरीजो के लिए गर्ल फ्रेंड भी बटोर लाती थी। उसकी भतीजी पदमावती रॉबर्ट वही अध्यापिका थी। इतवार के दिन वह अपनी एक दो सहेलियो को ले आती थी। "एण्ड माई बायज हैव ए गुड टाइम"—वह कहती। जो अपने मरीजो का इतना ध्यान रखती थी, वह उनमे से एक आध को ताज दिखाने ले भी आए, तो क्या दोष था ! फिर तोप मेरी बचपन की स्मृतियो का स्मारक-स्तम्भ थी। मैं स्वय ही कार लेकर स्टेशन पहुच गई।

ट्रेन से तोप राजेन्द्र के साथ उतरी और मेरे गले के नीचे एक कडवी घूट उतर गई। यह तो चार मरीजो को जीवन सुधा पिलाने वाली तोप नही थी। यह वही पुरानी तोप थी जिसके नाम का गोदना गुदाए अभी न जाने कितने गोरे सिपाही विदेश की कब्रो मे बेचैन करवटें ले रहे होगे। होठो पर तेज लिपस्टिक था, गले मे नकली मोतियो की माला कानो मे झलमलाते बुन्दे और चटख शोख रंग की लाल साडी। साथ मे राजेन्द्र था—वही स्वास्थ्य से दीप्त

वैशोय की मरीचिका, निकट से देखने पर उदास पीला चेहरा और निष्प्रभ आखें। रोग ने शरीर को छोड, फेफडो का कक्ष रिक्त कर उन उदास आखो म शायद डेरा डाल दिया था।

तोप ने अपने स्वभावानुसार मेरे दोनो गालो को अपने ईसाई प्रेम का प्रदशन कर, चटाख चटाख शब्दो से चूमा और बोली—'अपने शाहजहा को आगरा का ताज दिखाकर हनीमून इनआगरेट करेगा, है ना डार्लिंग ?"— वह राजेन्द्र का हाथ पकडकर बोली।

मुझ काटो तो खून नही।

कहा पचास वष की अधेड तोप, कहा अपने यौवन के हीरे सा दमने वाली का आखें चौधियाता वह सुदशन युवक ! क्षण भर को मुझ अपने मर्यादाशील परिवार का ध्यान आ गया। ईश्वर की दया स पति किसी काम स दिल्ली गए थे, पर बच्चे। सयानी लडकिया थी क्या कहगी, ममी की दोस्त भी कैसी हैं! हुआ भी ऐसा ही। घर पहुचते ही मेरी लडकिया मुझ एका त मे खीच ले गइ— छि छि ममी सब नौकर भी हस रह है ! कितना हैण्डसम है एकदम रॉक हडसन ! और वह खूसट बुढिया समझ क्या रही है अपने को !"

मैं उस क्स समझाती, पचीस वष पूव तोप अपने को जिजर रोजम समझती थी और आज भी वह अपने का लिज टेलर से कम नही समझ रही होगी !

ठीक कहती थी छाटी भाभी होली का अदृश्य अबीर गुलाल वह प्राणो मे भरकर लाइ थी। कभी लाल कभी पीली और कभी हरी साडियो म गिरगिट का सा रग बदलती वह नय पति के साथ दिन रात घमती रही। मैंने भी उनके आतिथ्य मे त्रुटि नही रहने दी पर राजे द्र खाने की मेज पर अभी भी सहमा रहता। समोसा उठाता तो तोप दगने लगती— नो डार्लिंग, नो समोसा ! तली-भुनी चीजो का परहेज करना होगा। अभी पेचिश से उठे हो चाय लोगे ? मस्ट यू ? न हो तो एक प्याला दूध पी लो चाय तुम्ह ऐग्री नही करती।"

ताप के युवा वैज्ञानिक पति की स्वाभाविक भूख की अस्वाभाविक मत्यु पर मुझ बेहद अफसोस होता, पर मैं चुप रह जाती। तीन दिन का फलाहार करा, वेला कुवेला ताज दिखा तोप ने अपन शाहजहा को अधमरा कर दिया। चौथे दिन वह विचित्र जोडी चली गई।

ध यवाद का एक पत्र लिखकर ताप ने फिर साठ खीच ली। एक वष तक मुझ उसका कोई समाचार नही मिला।

दूसरे वष मैं बहन की लडकी की शादी से लौट रही थी। लखनऊ के रिटायरिंग रूम म एक रात काटनी थी। स्टेशन मास्टर न कहा "यहा तो बडी हैवी बुकिग रहती है, वैसे एक कमरे मे एक पलग खाली है। यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो रह सकती हैं।"

मैं इतनी थकी थी कि कमरे के दूसरे पलग पर कौन है, स्त्री या पुरुष, मेरे ध्यान मे ही नही आया।

कमरे मे पहुची, तो धीमी रोशनी जल रही थी, कमरा बहुत बडा और हवादार था। आसपास दो पलग थे। एक पर सिर से पैर तक चादर ओढे कोई खर्राटे ले रहा था। शरीर के आकार से वह नि स देह पुरुष ही था। पोस्टमार्टम के लिए आई लाश की भाति उसका पेट रामढोल सा बीच मे बेहद फूला फूला लग रहा था। एक अपरिचित पुरुष के साथ एक ही कमरे मे अगल बगल सोने मे मेरा सनातनी हिंदू सस्कारी चित्त बुरी तरह झिझक उठा। क्या करू पैसे भी तो भर दिए थे। पर छि, इस कमरे मे तो मुझसे नही सोया जाएगा। इससे तो वेटिंग रूम का आराम केदारा ही भला। मैं जाने ही का थी कि एक इजन गरज उठा।

पास के पलग पर अपरिचित पुरुष हडबडाकर उठ बैठा।

मैंने देखा वह अपरिचित पुरुष नही, चिरपरिचित तोप थी।

"ओ माई! हाय मेरे मसी तेरा सितारा बुलन्द हो! जिसे जहा चाहा मिला दिया! किसने सोचा था कि ऐसे मिलेंगे!"

"तुम क्या बीमार थी, तोप? कितना बदल गई हो?" मैंने पूछा।

बिना मेकअप के तोप फीकी फीकी ही नही, बेहद झटकी लग रही थी।

"तोप और बीमार?" वह हसी—'वह तो थोडा स्ट्रेन पडा है डार्लिंग! हरिद्वार से लौटी हू ना, हरिद्वार से!"

मैं चौंकी। नित्य इतवार को गिरजा जानेवाली, दिन म अस्सी बार चटाख चटाख बाइबिल को चूमनेवाली तोप हरिद्वार कैसे गई?

"राजेन्द्र के फूल चढाने गई थी हम!" वह एक लम्बी सास लेकर बोली—"तुमको क्या लिखती, इधर बहुत जिद्दी हो गया था। परहेज जरा भी नही बरता था। न बकरी का दूध, न सेब का रस। बस दिन भर चाट और हिंदी सिनेमा! हमने कितना समझाया, देखना है ता अग्रेजी पिक्चर देखो। पर नही, वही सस्ता इक्साइटमट उसे ले गया। एक एक दिन का तीन तीन था!"

तोप के अनुशासन की लगामो से कसा घोडा आखिर बिदक ही गया!

'दो दिन बीमार रहा, बस। अब देखो हरदीप, मिजेट और पटेल, तीनो के फेफडो म भूसा भरा था वह हमारा आडर माना, तो ठीक होकर अपना अपना घर गया। यह जिद्दी मरने से पहले बोला—'हमारा फूल लेकर हरिद्वार मे बहाना!' एक बार सोचा अपने ग्रेवयार्ड मे खूबसूरत सी सगमरमर की कब्र बनवा देंगे पर उसकी मरजी के खिलाफ उसकी आत्मा का रोवनी भी तो कब्र स निकल कर हरिद्वार ही भागती।"

उसका गला भर आया। वह चश्मा उतारकर आख पोछने लगी। इधर

उतारकर उसने मेज पर धर दिया था। धीमी रोशनी में बहुत बूढ़ी लग रही थी।

मुझे तरस आ गया— 'चलो, तोप, तुम मेरे साथ चलो। बच्चा में जी बहल जाएगा।" मैंने कहा।

"थैंक यू डालिंग पर मैं अकेली कहा हू! खुदा बाप क्या मुझे अकेली रहने देता! एक गरीब मरीज उसने फिर भेज दिया है फिर चरिटी! टी० बी० नहीं है, प्लूरिसी थी। अब बिलकुल ठीक है। बड़ा होनहार लडका है सैम्युअल, मेडिकल कॉलेज में आखिरी साल है। इस साल आराम करेगा। अगले साल जाएगा। ईसू न चाहा तो कभी सर्जरी में नोबल प्राइज लेगा। उसीको घर सौंप आई हू। फिर मिलेंगे हनी!" वह सुबह सामान बटोरकर चली गई।

जब तक आगरा रही, हर तार को डर डरकर खोलती। क्या पता, तोप फिर ताज देखने आ जाए, पर तोप नहीं आई। अचानक फिर क्रिसमस के दिन एक प्यारा सा कार्ड आया। अब के तार के खम्भे पर चोंच से चोंच मिलाए कबूतरों का एक जोडा था। "शुभकामनाओं के साथ—तोप और सैम्युअल" अवश्य यह वही अधूरा डाक्टर होगा। पिछली बार देश का दुर्भाग्य था कि एक होनहार वैज्ञानिक नहीं रहा और अब यह डाक्टर! पर इस बार यदि तोप के नये जीवन साथी ने उससे पहले संसार छोडने की धृष्टता की तो पहले वैज्ञानिक की भांति वह तोप को छल नहीं पाएगा। संगमरमर की फूलों से ढकी कब्र के नीचे दबी उसकी जिद्दी आत्मा को तोप हरिद्वार की ओर भागने नहीं देगी। कहीं भाग भी गई, तो उसका प्यारा खुदा बाप क्या उसे कभी अकेली रहने देगा!

मधुयामिनी

पूरे शहर मे विवाह लग्नो की बाढ सी आ गई थी । इस वष भाद्रमास म देवगुरु सिंहस्थ हो जाने से दो जून का विवाह लग्न ही अंतिम लग्न है ऐसी ही कुछ घोषणा कर कूर्मांचल के गण्यमान्य पंडितो ने कन्यादायग्रस्त पिताओ की नीद हराम कर दी थी ।

परपरा से कूर्मांचल मे सिंहस्थ गुरु लग्नादि के लिए वर्जित रहा है, फिर 'पुत्र भ्रात कलत्राणि ह्न्याच्छीघ्र न सशय' सुनकर अधिकाश धमपरायण सरल कुमायूवासियो को जसे साप सूघ गया था । एक तो वसे ही महगाई न सबका जीना दूभर कर दिया था, उसपर विवाह की इस महामारी ने तो देखते ही देखते एक से एक समृद्ध परिवार को मिट्टी म मिला दिया । लग रहा था कि सन अठारह वाली वही इन्फ्लुएंजा महामारी फिर से फैल गई है जिसने कभी नैनीताल की आधी जनसख्या को चुटकियो म साफ कर धुन दिया था । गेंहू के गगनचुम्बी भाव का यह हाल था कि एक क्विटल गेंहू गृह तक पहुचाने के पश्चात हृष्टपुष्ट गृहस्वामी की वयस के भी चार वष अनायास ही घटकर रह जा रहे थे । अनाज विवाह के मुकुट कन्ना घोडी, गानेवाली पेनेवर गवनारियो की फीस, सबम आश्चयजनक रूप की तजी का मूल कारण पडितो द्वारा उद घोषित यह नवीन विवाह बजट ही था, इसमे कोई स देह नही । बैंडवालों का तो पूछना ही क्या था, फटे से रामढोल की एक थाप ही औसतन अठन्नी म पड रही थी । वह तो भगवान ही की कृपा थी कि दाम दमाम और तूरी-नगाडे का चलन पहाड के शादी ब्याह स स्वय ही बडी समझदारी स उठ गया था, फिर भी हलवाई का एक एक कडाह किसी प्रसिद्ध वेश्या के मुजरे से भी महगा पडन लगा था । जितन म पहले सोहनहलवे की एक बट्टी आती थी, उतने म तो निगोडा एक बताशा तुल रहा था । यहा तक कि एक सडियल सी पचन्नी की फूलमाला भी सवा रुपये म बिकने लगी थी । शहर के कई मध्यवर्गीय मुरद बिना फूलमालाओ क ही सूनी गरदन लिए बडी विवशता से महाप्रस्थान क पथ पर चले जा रहे थ । बचारे करत भी क्या, यहा जीवितो ही की गरदन के लिए माला अप्राप्य हो उठी थी उन्ह कौन पूछता ! फिर भी कितनी ही महगाई हो और कितना ही अभावग्रस्त जीवन, जन्म, विवाह, मरण भला कभी रोके रुकते हैं ?

लगता था, पूरा शहर ही विषम विवाह ज्वर से ग्रस्त हो गया है। दायें बायें, जहा से देखो, वही से टेढा बाका, मोटा ठिगना, काला गोरा, एक न एक नौशा सेहरा बाधे मस्ती से झूमता चला आ रहा था। स्वय परमपुरुष ही शायद भरतार बन पूरे शहर को इस विवाह महोत्सव मे आकण्ठ डुबो रहा था कि अचानक पूरे शहर मे खलबली मच गई। खलबली मचने जसी बात भी थी—एक तो वैसे ही दुकानदार परिस्थितियो का लाभ उठाकर उपभोक्ता वग को पीसे दे रहा था, उसपर एक सवथा अपरिचित, एसे प्रवासी परिवार ने उस कोठी को मुहमागे दाम पर अपनी कन्या के विवाह के लिए ले लिया, जिसकी शहर से दूरी, पानी का अभाव, सर्वोपरि ऊचा किराया देख आज तक किसीका उसे लेने की हिम्मत नही पडी थी। एक बार एक विदेशी दूतावास के कुछ उच्चपदस्थ अधिकारी आकर कुछ दिना तक कोठी गुलजार कर गए थे, तब से वह खाली ही पडी थी। वैसे तो सीजन आने पर नैनीताल मे यदि चार बासा की टटरी पर भी छप्पर डाल दिया जाए तो वह भी बडी आसानी से अच्छे किराये पर उठ सकता है, पर इस कोठी की तो शान ही निराली थी। उसपर समद्ध मकान मालिक की अन्य चार पहाडा पर बिखरी दस कोठिया थी, जो उनके लिए सरकारी दफ्तरो का आवास बनी, दिन रात साना उगलती थी। शायद इसीसे उन्हे इसकी कोई चिन्ता भी नही थी, किराय पर उठे या न उठें। मैंने एक बार उनसे कहा भी था, "थोडा किराया कम कर छोटी सी पानी की टकी लगवा दीजिए, फिर दखते ही देखते किराये पर लग जाएगी। अब बडी बडी कोठियो का मार्केट नही रहा। अब तो लोग फ्लटनुमा चीज ही पस द करते है, जिसको न तो सजाना कठिन होता है, न साफ रखना "

"हाथी का भी तो अब मार्केट नही रहा, पर क्या वह अब भी खच्चर के भाव बिक सकता है ?' कहकर वह अपनी बर्मी सिगार फूकने लगे थे। मैंने फिर कुछ नही कहा। इतना मैं जानती थी कि न चतुर शाहजी किराया कम करेंगे, न कोई इस हाथी को खरीदगा। पर मेरी धारणा निर्मूल निकली।

एक दिन सुबह उठी, तो देखा, तीन चार नौकर एक साथ सूखी क्यारियो को तर कर रहे हैं, कही झाड फानूसो की धूल झाडी जा रही है और कही मोटे धूल भरे गलीचे कालीनो को निममता स पीटा जा रहा है।

'तुम कितना किराया कम करने को कह रही थी," शाहजी ने बडे गव से घोषणा की, "हमने कुछ और बढा दिया, फिर भी पूरे सीजन का किराया भर केवल आठ दिन रह यह प्रवासी परिवार कन्यादान करते ही फूलपुर से उड जाएगा।"

मेरे बगले से इस कोठी का फासिला कठिनता से तीन गज का था और अपने बरामदे मे पद्रह मिनट तक खडी होने के साथ ही मैंने इस प्रवासी परिवार

की आर्थिक स्थिति को भाप लिया। परिवार सीमित था और गृहसदस्यो से अधिक सख्या अभारतीय दास दासियो की थी। किसी भी गृह का भेदी विभीषण या तो गृह का भत्य होता है, या बालक। पर बालक तो इस परिवार म थे ही नही, और नौकरो की भाषा तो दूर निर्विकार चेहरो की एक एक रेखा किसी दुरुह पहेली से कम नही थी। उन चीनी मगोल चेहरो पर विलासी जीवन की अमिट छाप ही बस पल्ले पडती थी। छोटे मोटे दुम्बे से ठिगने कद के बातिक की छपी लुगी पहने कई नौकर भोर होत ही जलपान के आयोजन की भूमिका रचने म जुट जाते। कही बडे से हण्डे मे अडे उबाले जा रहे हैं। एक विचित्र आकर की विराट सिला पर मसाले पीसे जा रहे हैं। दो-तीन मोटी मोटी दासिया लुढक्ती पुढक्ती पर फडफडाती पलायनशीला 'टर्की' का पीछा करती खेतो की सीढिया फाद रही हैं। उधर मादक मसालो की खुशबू जिबह होत बकरे की मिमियाहट, टर्की का करुण विलाप मुझे वर्षो पूव के उन रियासती अटालाके प्रागण मे खीच ले जाता, जहा ऐसी ही मादक खुशबू थी। टर्की के पीछे लुढकती ऐसी ही मोटी मोटी कुटिल मुस्कान बिखेरती दासिया थी और टर्की का ऐसा ही सुपरिचित हृदय भेदी क्रन्दन था जिसने मेरे शशव की अबूझ चटोरी जिह्वा पर भी सदा के लिए सयम का ताला डाल दिया था। चेप्टा करने पर भी मैं आज तक टर्की का बहुर्चाचित स्वादिप्ट गोश्त जीभ पर नही धर सकी। आज भी मुझे यही लगने लगा कि जैसे महाराज ओरछा का गोवानीज खानसामा ही अपनी विचित्र भाषा मे बुदबुदाता टर्की की गदन पर छुरी फेर रहा है, और वह करुण स्वर मे विलाप कर रही है। पर इस परिवार के गहस्वामी को इस विलाप की कोई चिता नही थी। वह शायद नित्य सुबह के नाश्ते मे समूची टर्की खाते थे। बाहर ही खुबानी का एक बडा सा छायादार पेड था। उसीके नीचे मखमली लाल गद्दीदार कुरसी पर वह आकर बैठत तो शरीर की पूरी चरबी बडे बडे थक्को मे नीचे लटक जाती। मैंने कई मोटे व्यक्ति देखे है—किसीका चेहरा मोटा होता है, किसीकी गरदन, किसीके पूरे शरीर का मास उदराणव मे ही समाकर लहराता रहता है, किसीके हाथ पाव ही देखने वाले को अप्रतिभ कर देत हैं पर यह तो विचित्र मुटापा था। लगता था शरीर के किसी भी भाग पर छुरी घुमात ही खून का फव्वारा किसी टूटे नल की सी फुहारें छोडता रक्तकुण्ड की सप्टि कर देगा। पर तिवारी जी का कण्ठस्वर उनके चौकोर शरीर से एकदम ही बेमेल था। नन्हा सा क्षीण कण्ठस्वर ऐसा था, जसे कोई किशोर बालक कच्चे मीठे गले से टिहुक रहा हो। मेज पर नाश्ता लगते ही वह बडे अधैर्य से भूखे बाघ की भाति टूट पडते और पल भर मे ही टर्की का अवशेष अपने दुम हिलाते ग्रेहाउण्ड के सामने बिखेर देते।

खा चुकने के बाद एक ताड सी लम्बी दासी आकर नित्य उनका मुह धुलाती स्वच्छ नैपकिन बढाती, फिर चादी की तश्तरी मे धरी टूथपिक की हाथीदात की

कर सकता, जो समाज मे रहकर भी अपना अस्तित्व समाज से अछूता रखना चाहता है। उसकी अहं-भावना उसे एक दिन ठीक वैसे ही निगल लेती है, जैसे सर्पिणी स्वयं अपने ही से जन्मे अण्डे को। एक तो तिवारीजी ने अपने वैभव का चुग्गा डालकर शहर के पूरे व्यापारी वर्ग को फांस लिया था। सीजन आते ही नैनीताल में दूध-दही समृद्ध गृहों में बालकों और रोगियों को भी कौरेमीन के अनुपात मे लगने लगता था, उसपर दो रुपये किलो के दही को चार रुपये की मुंहमांगी बोली पर उठाकर तिवारीजी ने पूरे शहर का रेट बिगाड़ दिया था। पुलिस बैण्ड ही नहीं, रानीखेत के कुमाऊं हाईलैण्डर की भी एक एक गरदन पर इनका रिज़र्वेशन स्लिप झूलने लगा था। एक तो हलवाई वैसे ही मन्त्रियों को अदा दिखाने लगे थे, उसपर तिवारीजी ने सात सात प्रमुख हलवाइयों को बयाने की गहरी रकम खिला पिलाकर पालतू जानवर सा बांधकर रख लिया था। बेला के एक सौ सत्ताइस गजरों का एक साथ आर्डर हो गया था। फ्लैट के ओर छोर सन्ध्या होते ही जो बेला मोतिया की गमक से सुवासित हो उठते थे, अब फीके थे। कहीं एक बेला की कली भी सूंघने को नहीं मिल रही थी। जिस लगन में तिवारीजी की तथाकथित कन्या का विवाह था, उसी लगन में शहर की और भी बीस पचीस शादियां थीं—एक तो वही अन्तिम लगन था। *पता नहीं,* बृहस्पति भगवान को भी क्या सनक सवार हुई कि आव देखा न ताव, टप से जाकर सिंह राशि में बैठ गए! और फिर तिवारीजी भी तो अचानक आकर नैनीताल की प्रत्येक विवाहयोग्य कन्या की राशि पर किसी क्रूर ग्रह की भांति जम गए थे। *इसी बीच अनेक कर्णप्रिय समाचारों का पूरा थैला कन्धे पर लटका,* शहर का कुख्यात प्रेस रिपोर्टर नब्बू मास्टर मोहल्ले में आ धमका। दस मिनट के लिए प्रवासी तिवारीजी की हजामत बनाने गया और उन्हें मूंडकर ले आया।

बैंकाक से आए हैं। लखपती ही नहीं, खगपति हैं। वर्षों पहले इनके पूर्वज पिथौरागढ से जाकर थाईलैण्ड में बस गए थे। वहीं किसी प्रसिद्ध हिन्दू मठ के मठाधीश हैं। लाखों का तो चढ़ावा ही चढ़ता है। पांच बेटियां वहीं ब्याह दीं, अब सबसे दुलारी आखिरी बिटिया का कन्यादान करने स्वदेश पधारे हैं। बारात भी क्या ऐसी वैसी जगह से आ रही थी! 'ठेठ लन्दन से आ रही है, बीबी। जनवासे की पूरी हजामत का भार हमें ही सौंपा है तिवारी साहब ने। अभी उन्हींकी हजामत बनाकर तो आ रहे हैं हम।' नब्बू मास्टर ने ऐसे लहजे में कहा, जैसे उसका उस्तरा, जो स्वयं देवराज इन्द्र के गाल का स्पर्श कर चुका था, अब नैनीताल के अन्य किसी मानवीय गाल का स्पर्श कर तुच्छता को प्राप्त नहीं होगा। शहर के महिलावृन्द का कुतूहल छलांगें लेने लगा। कई तो अत्यन्त *उत्साह से स्वयं ही काम पूछने भी चली गई थीं पर गृहस्वामिनी ने न* तो विवाह का निमन्त्रण ही दिया, न विशेष अभ्यर्थना ही की, एक कोरा प्याला चाय का

पिलाकर ही टरका दिया ! जो भी हो, तिवारिन को उ हाने देख लिया, एक मैं ही रह गई थी। खैर, जिस दिन बारात आएगी, उस दिन तो बाहर निकलेंगी ही। जामाता को खील उडद परखने का पहाडी रिवाज तो जानती ही होगी तिवारिन। पर इसी बीच अचानक एक दिन मैंने मा बेटी, दोनो को एक साथ खिडकी पर खडी दख लिया।

बाप रे बाप, तिवारिन थी कि पूरी इमारत ! कहा पर कमर की परिधि और उदर के क्षितिज का आदि म त है,,कुछ समझ मे ही नही आया ! ठिगना कद, चमकता माथा और गोरा रग। चेहरे की सुर्खी देखकर तो मैं दग रह गई। यहा तो दो ही बेटिया ब्याहने मे चेहरे पर हवाइया उडने लगी थी और दिन मे ही तारे नज़र आ रहे थे और एक ये थी, पाच बेटिया दनादन ब्याह कर छठी का कन्यादान सिर पर नाच रहा था, फिर भी किसी शानदार हवेली सी बुल द खडी जगमगा रही थी। साथ खडी बिटिया तो गुलाब की ताज़ा खुशनुमा कली सी झूम रही थी।

एकदम सीप का सा रग, खूब कसकर बाधी गई कुछ-कुछ ऊची चोटी और प्रत्यचा सी भवें। उतनी दूर से मैं ठीक से देख नही पाई कि उन भवो की कलात्मक सज्जा मे विधाता का चातुय था, या स्वय किशारी स्वामिनी की चतुर अगुलियो का, पर जिसकी भी हस्तकला थी, वह नि स देह सर्वोच्च कोटि की थी। वह कठिनता से प द्रह सोलह वष की होगी और शायद उसी कैशोय की अल्हड लुनाई ने उसके सौम्य चेहरे के सौ दय को द्विगुणित कर दिया था। वह रात के कपडा म ही खडी थी। तग मुहरी का लस लगा पाजामा और ढीली बाहा के कुरते मे वह मुझे किसी तेरह चौदह वष क चीनी बालक सी ही लगी। उसके चेहरे पर भी पीलिया रोग का सा पीलापन था। शायद ज म से ही मगाल देशावास न चेहरे को इस अस्वाभाविक रग म रग दिया था। चेहरे का मुख्य आकपण था उसका गम्भीर और उसकी तरल दृष्टि। कुछ ही क्षणा के लिए मैंने उसे देखा, पर फिर भी मुझे लगा, जैसे यह लडका अपनी इ ही आखो क माध्यम से हसती है, बोलती है, परिचय लेती है और देती है। निश्चय ही ये चिडिया के स अघरपुट निता त आवश्यकीय बातें कहने का ही खुलते होगे। उसकी मा ने शायद कुछ कहा और वह हस पडी। उसकी भुवनमोहिनी हसी देखकर मैं मुग्ध हो गई। क्षणिक हसी म उसका न हा सा बकदूथ चमका और उसी दिन समझ मे आया कि क्यो ऐसे तनिक ऊचे से गजदन्त को सौ दय का एक अग माना जाता है।

वास्तव म ल दन की बारात के योग्य ही दुल्हन थी वह। इस सु दरी पुत्री को देखने के बाद सडियल दम्भी तिवारी के सो खून भी माफ किए जा सकत थे। मा-बेटी थोडी देर भी खिडकी पर खडी रहती, तो मैं शायद वर्तालाप का

सूत्र स्वय ही उन्हें पकडा देती, पर तिवारीजी ने अपने कच्चे गले की पुकार से दोनो को भीतर खीच लिया।

विवाह के केवल तीन दिन रह गए थे और इसी बीच तिवारी महोदय के निलज्ज, असभ्य आचरण से पूरा पवतीय समाज क्षुब्ध हो उठा था।

क्या खाक पहाडी है, यह बोदा व्यक्ति जब स्वदेश मे आकर अपने ही देश व घुआ को नही न्योत सका ! माना कि वह यहा के रीति रिवाजो से एकदम ही अनभिज्ञ है और किसीको भी नही जानता, पर अपने समाज म जब रहने आया है, तो उसे शिष्टाचार का महत्त्व तो समझना ही होगा। फिर शिष्टाचार का अस्तित्व तो प्रत्यक समाज म अनिवाय रूप से रहता है, चाहे वह स्वदेशी हो या विदेशी। जब वह अकड से जेब मे ही दोनों हाथ छिपाए घूमत रहगे, तो उनसे हाथ मिलाएगा भी कौन ? अब सात हलवाइया की बनी थालोभरी मिठाइया क्या बाधकर थाईलण्ड ले जाएगे ?

तिवारीजी तक समाज का आक्रोश न पहुचा हो, ऐसा हो ही नही सकता था, क्योंकि उनक मुहलगे नापित नब्बू को खूब जली कटी बातें सुना दी गई थी, पर तिवारीजी के कान पर जू भी नहीं रेंगी। लन्दन की बारात आ भी गई और निमन्त्रणपत्र कही नही बटे। शहर के एक नामी होटल म केवल सात जनो की बारात ठहराने का प्रब घ पहले ही हो चुका था।

वर के पिता भी कन्या के पिता की भाति पीढियो पूव लन्दन म बस गए थे, इसीस वर को छोडकर अन्य सबके ललमुहे चेहरे, सुनहले गाल और नीली भूरी आखो मे विदेशी लटका ही अधिक था।

'क्या रे नब्बू !" हमारी प्रतिवेशिनी मुखरा गोदी दी न हसकर पूछा, 'हल्ला तो बहुत सुन रहे थे ल दन की बारात का, आए हैं कुल सात "

किराया भी तो इतना है, गोदी बीबी," नब्बू अपने नये प्रभु से इतना प्रभावित था कि उनपर किए गए प्रत्येक वार को झेलने अपने वाकचातुय की ढाल को चट से खीच लेता था। 'अब हवाई जहाज का एक आदमी का किराया ही इतना है कि हम जसे तो उतने म दस बिटिया ब्याह लें !" पर नित्य आंख नाक से चुलबुली हसी की रस फुहारें छोडती, अपने बालवधव्य की न्यथा को धो पाछकर बहाने वाली गोदी दी भी क्या कभी हार मान सकती थी ? 'जो भी कह रे, नब्बू, वर का बाप तो मुझे फिल्मी बाप लगै है ! न बेटे स सूरत शक्ल ही मिल है, न रग ! गार सिपाहिया की पल्टन ही लग है मुझे तो ! जरा पता तो लगाना, बाप असली है या नकली !"

नब्बू तुनककर चला गया और फिर नही आया। तिवारीजी लाग निमन्त्रण न भेजें, हम सबकी आखा पर पट्टिया तो बाध नही सकत थे।

बारात आई और एक एक खिडकी पर एक साथ बीस-बीस मुण्ड जुड भिड

गए।

बारात की सज्जा एव स्वागत आयोजन मे तिलमात्र भी त्रुटि नही थी।

रगीन कागजी झडियो की बदनवार से वर की डाडी वैसे ही सधे हाथो से सजाई गई थी, जसे हर पहाडी दूल्हे की डाडी सजाई जाती है और प्रत्येक अभाग पहाडी दूल्ह की ही भाति इस सुदशन व्यक्ति को भी पूरा कार्टून बना दिया गया था। पीली चपकन, लाल सिन्दूरी रेशमी धोती कमर मे पट्टा सेहरे का ऐसा बुर्का जिससे लाख ताक झाक करने पर भी कभी एक चौथाई मूछ पल्ले पडती, कभी एक तिहाई नाक! ललाट कितना चौडा है, यह देखने की भी कोई गुजाइश नही। पिसे चावलो की असख्य बुदकियो से पूरा माथा ऐसे रग दिया गया था था, जसे जोधपुरी चुनरी की छपाई हो। सिर पर कसकर बधा मुकुट, जिसम अकित गणेशजी की त्रुटिपूण टेढी सूड कसकर बाधे जाने से और भी टेढी लग रही थी। मुकुट के पीछे चिपके किसी गभ निरोधक असबारी विज्ञापन को जोर से पढ गोदी दी ने हमे हसा हसाकर मार ही दिया था। विधाता भी न जाने उनके लिए कहा से ऐसी विनोदपूण सामग्री जुटाकर रख देता था।

स्वय तिवारीजी की सज्जा देखकर भूख भागती थी। नित्य विदेशी पैंट की धार सी क्रीज चमकानेवाला यह अकडू व्यक्ति आज सिर से पैर तक पूरा पहाडी पिता बना था।

लाग लगाकर पहना गया पीताम्बर, कधे पर जरी का दुशाला और लह रिया साफा चमकाते वह अपनी सारी शान शौकत ताक पर धरकर दामाद के पर धोने झुके, तो गोदी दी की भी बोलती बन्द हो गई।

कसा उजला झकझक दामाद मिला था तिवारीजी को! चाहते, तो जामाता के चरणयुगल धो ही नही, चरणामृत पान भी कर सकते थे।

हमारा पूरा मोहल्ला सास खीचे अपनी खिडकी से गोधूलि म सम्पादित यह अनुपम धुलयध की छवि आखो ही आखो मे पी रहा था कि कलमुहा नब्बू न जान कहा स आकर, हम सबके सीने मे एक गोली दागकर चित कर गया।

"कसा बढिया दूल्हा है नब्बू।" गोदी दी ने कहा, 'तुझे तो खूब नेग मिला होगा रे आज ' डेलो तो तू ही कर रहा था "

'हा बीबी, नग मे तो पूरी अमरीकी सोने की मुहर मिली पर दूल्हा देखने ही देखने का है—मोम का पुतला।"

"क्या?" सत्ताईस कण्ठो ने एक साथ चौंककर पूछा।

'सुबह ही हजामत बनाने गया, बीबी, तब ही समझ गया था कि दाल म कुछ काला है। एक आख काच की है बीबी।"

'चल हट!" अविश्वास से हम सबने उसे झिडक दिया। मुआ हमेशा ऐसी ही मनहूस खबरें लाकर रग मे भग कर देता था।

क्या कल भी नई बहू को ऐसे ही बाहो मे भर सकेंगी, जैसे ग्राज 'हाउ स्वीट !'—कहती उससे लिपट गई थी ?

शायद नही

न सही

ग्राज तो हनीसकल की मदमस्त खुशबू मे लिपटी इस परितृप्त युगल प्रेमियो की ग्रनोखी जोडी को कोई नही छेड पाएगा । ग्राज उनकी मधुयामिनी मे कोई विष नही घोल सकेगा कोई नही !